ब्रह्मचर्य-जीवन

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम् ॥

लेखक

स्वामी योगानन्द

प्रकाशक

साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीय संस्करण] १९४९ [मूल

भूमिका

मानव जीवन का उद्देश्य पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ और स्वास्थ्य का ठीक वही सम्बन्ध है जो प्राण और शरीर का है। जिस प्रकार प्राण से रहित शरीर निर्जीव हो पंचतत्त्व में मिल जाता है, उसी प्रकार स्वास्थ्य-विहीन निर्वीर्य पुरुष किसी प्रकार का पुरुषार्थ करने में असफल एवं भग्न हृदय होकर स्वयं अपने ही लिए भार-स्वरूप हो जाता है। अतः पुरुषार्थ के लिए स्वास्थ्य की सर्व प्रथम आवश्यकता है। शरीर की रक्षा करना एवं इसे स्वस्थ बनाना ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। स्वस्थ रहने ही पर मनुष्य अन्य धर्मों का यथोचित पालन कर सकता है। यदि शरीर शक्तिमान, बलिष्ठ और नीरोग है, तो मनुष्य अनेक विपरीत परिस्थितियों से आक्रान्त रहने पर भी जीवन की आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करते हुए समाज एवं देश की सेवा करके अपनी अमर कीर्ति स्थापित कर सकता है, किन्तु यदि वह अस्वस्थ है, व्याधियों से जर्जर होकर त्राहि-त्राहि कर रहा है, तो समस्त सांसारिक वैभव एवं सुख-साधन के रहने पर भी उससे कुछ लाभ नहीं उठा सकता। अतः स्वास्थ्य की रक्षा कर इसे पुष्ट और सबल बनाना मानव-जीवन का प्रथम और परम कर्तव्य है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य पालन ही एकमात्र साधन है। मानव-शरीर में वीर्य ही प्रधान वस्तु है। वीर्य का धारण करना ही ब्रह्मचर्य है। वीर्य ही शौर्य, तेज, साहस, उत्साह एवं अध्यवसाय का जनक है।

देश के इस पतन के मुख्य कारण—आधुनिक शिक्षा-प्रणाली, सामाजिक कुरीतियाँ एवं माता-पिता की अन्यमनस्कता आदि हैं। प्राचीन भारत में विद्यार्थी, शास्त्र अध्ययन के साथ ही ब्रह्मचर्य का यथेष्ठ पालन करते थे।

किन्तु देश के दुर्भाग्य से आधुनिक शिक्षा-पद्धति में विद्यार्थियों को स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य की शिक्षा के अतिरिक्त अन्य सभी अनावश्यक विषयों की शिक्षा दी जाती है। यह उचित नहीं है। बालक ही राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। इन्हीं पर देश का उत्कर्ष और अपकर्ष निर्भर करता है। ब्रह्मचर्य के ह्रास के कारण ही देश पराधीनता की शृखला में आबद्ध होकर कराह रहा है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने 'ब्रह्मचर्य-जीवन' लिख कर एक बड़े आवश्यकता की पूर्ति की है। इसमें लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा, उसके ह्रास के कारण, व्यापक अनाचार तथा सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख करते हुए वीर्य-रक्षा के नियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक गृहस्थ इस पुस्तक को पढ़कर ब्रह्मचर्य के महत्व को समझने की चेष्टा करेगा।

महाशक्ति-भवन
काशी

विजयबहादुर सिंह बी० ए०

विषय-सूची

ब्रह्मचर्य-जीवन

पहला अध्याय

वर्तमान अवस्था

संसार में सभी सुख चाहते हैं। सभी चाहते हैं कि हमारे शरीर में इतनी शक्तियाँ आकर समा जायँ जिनके द्वारा हम बड़े बड़े दुरूह कार्यों को भी पूरा करके अपने लिए स्वर्गिक सुखो की एक नई दुनिया तैयार कर लें; पर, क्या वे कभी यह भी विचार करते हैं कि जिनकी हम कामना कर रहे हैं उन्हें पाने के लिए कुछ दूसरे प्रकार के उन गुणो और शक्तियों की आवश्यकता होती है जिनको हमने अपनी अज्ञानता से नष्ट कर दिया है और इस समय भी बराबर उसका हवन करते जा रहे हैं। यद्यपि वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि उनका पथ बुरा है—उनके आचरण से उन्ही के शरीर की शक्तियाँ छिन्न भिन्न हो रही हैं तथापि वे अपनी काम-पिशाची प्रवृत्ति से अलग नहीं होते। इसी से आज संसार दुखी है।

विषय-वासना की लहरें

संसार के उदर मे, इस समय जिस विषैले कीड़े का विष अपना विनाशक प्रभाव दिखा रहा है और जिससे वह अधिक पीड़ित और जर्जर होता जा रहा है; वह है पाप और विषय-वासना का कीड़ा ! संसार का प्रत्येक देश आज इस कीड़े से दुखी है। ऐसा कोई भी देश नहीं जिसकी शानदार सभ्यता के भीतर पाप का बाज़ार गर्म न हो; विषय-वासना की भयंकर लपटो में राष्ट्रीय शक्तियों का हवन न होता हो।

बच्चे-बच्चे तक इसके फंदे में फँस गये हैं ! कुमारी बालिकाएँ भी इससे अपना पिंड नहीं छुड़ा सकी हैं। ऐसा कोई दिन नहीं जाता जिस दिन अख़बारो द्वारा ऐसी घटनाएँ आँखों के सामने न आती हों। दिल काँप उठता है—आत्मा सिहर जाती है और साथ ही संसार और मानव-जीवन के मूल उद्देश्यों को समझ कर इस ससार के मनुष्यों से घृणा भी होने लगती है।

अन्यान्य राष्ट्रो की भाँति ही हमारा देश भी आज छिन्न-भिन्न हो रहा है। हमारे देश के अन्दर भी वासना का विषाक्त कीड़ा अपना विष घोल रहा है। चारो ओर पाप की विभीषिकाएँ दौड़ रही हैं। लोग अपने मानवी कर्तव्यो को भूलकर बिजली की भाँति पाप की ओर दौड़ रहे हैं। अप्राकृतिक व्यभिचार, काल की तरह लम्बा मुँह फैलाकर, छोटे-छोटे सुकुमार बच्चो तक को हड़प रहा है। कोई वर्ग इस अनुचित पाप के शिकंजे से बचा नहीं है—सभी के हाथों में उसकी मज़बूत जंजीरें पड़ी हुई है ! इसका क्या कारण है ? क्या उस समय भी, जब देश की गोदी मे अर्जुन और भीम ऐसे महाबली, कृष्ण और राम ऐसे धर्म-प्रेमी दिखाई देते थे, यही पाप की लहर चारो ओर दौड़ रही थी ? इसी पाप की भयंकर मनोवृति ने सबको दबोच रक्खा था ? नही, उस समय धर्म का राज्य था—सत्य की दुनिया थी और उसको मज़बूत करने के लिए सत् शिक्षा का व्यापक प्रभाव सबके दिलो में अपना अलौकिक दृश्य दिखा रहा था। सब जानते थे—मानव और ससार क्या है ? संसार मे मानव-जीवन किस प्रकार अपने गुणों और शक्तियो का विकास कर सकता है। कौटुम्बिक जीवन के सूक्ष्म रहस्यो को भी जानना उनके लिए धर्म की बात थी। पिता अपने पद को जानता था और माता अपने महत्त्व को। सन्तान पैदा कर देना ही केवल उनका उद्देश्य नहीं था। सन्तान पैदा करने के पहले, माता-पिता दोनो अपने हृदय मे ऐसी शक्तियों का संचय कर लेते थे—जिनसे बालक का

हमारी वर्तमान दशा

विकास होता था; जिनसे वह अर्जुन और भीम-सा बहादुर बनकर सारे संसार को हिला देनेवाला अनुपम सामर्थ्यवान बनता था। इसीसे—केवल इसी मानवी नीति के पालन से—भारत के माध्यमिक युग का वह इतिहास संसार में पूज्य है, आदरणीय है।

किन्तु आज उसी भारत के ऊपर कुशिक्षा का प्रकोप है। उसकी वह सभ्यता और शिक्षा उसके बीच से उठ गई है। उसके गुरुकुल और ऋषिकुल, जिनमे विद्यार्थी कुश की साथरी बिछाकर अपना तपोमय जीवन व्यतीत करते थे, अब कहीं देखने को भी नहीं मिलते। अब तो कालेजो और स्कूलो की शानदार कोठियाँ अवश्य दिखाई देती हैं। उनमें विद्यार्थियो के पढ़ने के लिए वे मनोमुग्धकारी सामग्रियाँ भी रहती हैं, जिनका ऋषिकुल के उन तपस्वियो को दर्शन भी नहीं होता था। पर उस गरीबी और इस अमीरी मे कितना अन्तर है! क्या यह सत्य नही है कि वे अपनी गोद में एक ऐसा लाल पालती थीं, जिसकी ज्योति से सारा देश जगमगा उठता था और ये ऐसा एक कंकड़ पाल रही हैं, जिन्हें देखकर राष्ट्र की माता रो रही है—विलाप कर रही है!!

सचमुच देश की इस भीषण परिस्थित की सारी जिम्मेदारी आधुनिक शिक्षा पर है। स्कूल और कालेजों की पुस्तकें जहाँ प्रेम और वियोग की कहानियो से भरी पड़ी रहती हैं, वहाँ उनमें सदाचार और ब्रह्मचय के शायद ही दो एक पाठ रहते हो! उन्हे यह बताया ही नहीं जाता कि ब्रह्मचर्य क्या है? इससे मानव-जीवन का कितना और किस प्रकार-विकास हो सकता है! केवल इसी अज्ञानता के कारण बड़े-बड़े शिक्षित नवयुवक आज अशिक्षा के अन्धकार में पड़े हुए हैं! कामोत्तेजक और विलासी वस्तुओ के दास बनकर वे अपने शारीरिक शक्तियो का अपव्यय कर रहे हैं। उन्हे मालूम नहीं कि शरीर की भित्ति को स्थायी रखने वाली नीव को हम अपने ही हाथों से गिरा रहे हैं। वे तो सोचते हैं, हमारी सोडा वाटर की बोतलें, ब्रश और कंघियाँ ही हमारे जीवन

शिक्षा प्रणाली के मुख्य दोष

के लिए पर्याप्त हैं। इन्हीं के द्वारा हम अपने जीवन को टिका सकेंगे और बहुत दिनों से आशा की राह पर प्रतीक्षा करने वाले माता-पिता के अरमानों को भी पूरा कर सकेंगे। कितनी असत्य धारणा है! पर इस में उनका क्या दोष? उन्हे यही बताया गया है—उन्हें यही सिखाया गया है। फिर वे कैसे अपने को उन्नति पर ला सकते हैं; कैसे राष्ट्र की आशा और आकांक्षा बनकर अपनी मातृभूमि की आँखों के सामने जा सकते हैं!!

प्रायः माता-पिता की भी यही अवस्था होती है। वे कभी भूल-कर स्वप्न मे भी यह विचार अपने दिल मे नही लाते कि हमारा पुत्र देश की सम्पत्ति है; उसके हृदय में ऐसी शक्तियाँ आनी चाहिए जिन से हमारे राष्ट्र का कल्याण हो। वह किस प्रकार सत्य और धर्म का गहरा प्रेमी बनकर संसार मे अपनी मर्यादा स्थापित कर सकेगा? किस तरह उसका शरीर संयमी बनकर रोगो से छुटकारा पा सकेगा? किस प्रकार ब्रह्मचर्य और सदाचार की मनोहर शिक्षाएँ उसके हृदय मे कूट-कूट कर भरी जा सकेंगी? किस तरह वह राष्ट्र का प्रेमी बनकर अपनी सभ्यता और भाषा से प्रेम कर सकेगा? वे तो सोचते हैं, हमारा पुत्र जल्दी से जल्दी कालेज की ऊँची डिगरियाँ प्राप्त कर किसी सम्माननीय पद पर नियुक्त हो जाय। उनके लिए पुत्र-शास्त्र का यही तन्त्र है, यही मत्र है। वे इसी के लिए प्रयत्न करते हैं। यदि इसके लिए उन्हे अधर्म की राह पर चलना पड़े तो भी वे उसकी परवाह नहीं करते। वे केवल अपनी इसी छोटी कामना की सिद्धि के लिए सुकुमार मति के बालको को ऐसे वातावरण मे डाल देते हैं जो उनके जीवन के लिए अत्यन्त विषैला और कंटकमय होता है। जब माता-पिता और शिक्षक ही बच्चो को अज्ञानता के कुएँ मे ढकेलते हैं; जहाँ वे ही उनके सदाचार और सयम पूर्ण जीवन की उपेक्षा करते हैं, तो वे कैसे पूर्ण पडित बनकर संसार के सामने आ सकते हैं? कैसे सयमी और ब्रह्मचारी बनकर अपनी

माता-पिता का उत्तरदायित्व

शक्तियों से संसार को चमत्कृत कर सकते हैं ? कैसे राष्ट्र के चारों ओर घूमने वाली विपत्तियों का सामना कर उसे दुःख के शिकंजे से छुड़ा सकते हैं ? माता-पिता ही तो बालकों के सर्वस्व हैं। वही तो उनके विधाता और जीवन-निर्माता हैं। जब वही उन्हे अन्धकार में झोकते हैं तो वे क्यो न गिरें; जब वही उन्हें अर्थों का दास बनाते हैं तो वे क्यों न बनें; किन्तु उनकी यह मनोवृत्ति राष्ट्र, समाज और अपने लिए भी क्या घातक नहीं है ? क्या इससे उनकी भी आशाएँ पूरी होती हैं ? क्या उनके बुढ़ापे का वह आश्रयदाता, सचमुच सहारा बनकर उनके हाथों की लकड़ी बन पाता है ? नहीं, वह कुछ नही कर पाता। धार्मिक और मानवी शिक्षा के पूर्ण अभाव में वह निर्जीव बन जाता है। और दूसरे की कौन कहे, अपनी ही सहायता के लिए संसार मे दर-दर हाथ फैलाता हुआ फिरता है।

नवयुवकों पर प्रभाव

एक नहीं, हज़ारों-लाखों ऐसे नवयुवक आज भारत के बड़े-बड़े शहरो की गलियो में फिरते हुए नज़र आ रहे हैं जो अपने माता-पिता की अज्ञानता से ही अपना सब कुछ बर्बाद कर चुके हैं, जिनके चेहरे पर तेज और शरीर में शक्ति नहीं है, जो विलास और वासना को अपनी सहचरी बनाकर जीवन-तत्वों से भिखारी बन चुके हैं। वे अकेले ही नहीं हैं, उनके पीछे उनके माता-पिता की आशाएँ हैं, उनके कुटुम्ब की अभिलाषाएँ हैं ! पर वे तो अपनी ही सहायता करने में असमर्थ हैं। उनके शरीर में इतनी भी शक्तियाँ शेष नही रह गई हैं कि वे ससार के मैदान में दौड़-धूपकर अपना तथा अपने पीछे चलनेवाले परिवार का भरण-पोषण कर सकें। ससार मे शक्ति ही तो सब कुछ है। जिसमें शक्ति है, जिसके हृदय मे साहस और बल है, वही तो ससार का राजा है। संसार में सम्पत्ति और सुख की कमी नहीं; कमी है तो साहस और शक्ति की ! सम्पत्ति तो साहस और शक्ति के पीछे पीछे दौड़ती है। जिसने अपनी सम्पत्ति को लुटा कर भी अपनी शक्ति की रक्षा की है, वह दरिद्र होते

हुए भी सुखी है, वह निर्धन होते हुए भी धनवान है। उसे संसार की भयंकर अवस्थाएँ भी अपने मार्ग से विचलित नही कर सकती। वह अपने मार्ग पर सिंह की तरह दहाड़ता हुआ बराबर आगे बढ़ता ही जायगा। इसलिए संसार मे बसनेवाले प्रत्येक प्राणी को अपनी शक्ति की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

शारीरिक बल का महत्त्व

संसार मे शरीर की शक्ति ही अत्यन्त श्रेष्ठ शक्ति है। जिस मनुष्य के पास शारीरिक शक्ति है, वह इस रत्नमय संसार मे कभी भी दुःख नहीं उठा सकता। यदि किसी के घर में अतुल धन भरा हुआ हो और रोगी तथा शक्तिहीन हो, तो वह धन उसके किस काम का? वह तो उसके लिए उस अन्धे पुरुष के समान है, जो इच्छा रहने पर भी किसी चीज़ के पाने में लाचार रहता है; किन्तु फिर भी लोग इस ओर ध्यान नहीं देते हैं और वासना की भयकर अग्नि में अपनी शारीरिक शक्तियो को बराबर झोंका करते हैं। वे यह ख्याल नहीं करते कि जिन प्राणो के सुखों के लिए हम अपनी शक्तियो का विनाश कर रहे हैं, वे ही हमें बूढ़ा और हमारे शरीर को जीर्ण-शीर्ण जानकर अपने घोसले से उड़ जायँगे। कारण, इन शक्तियो ही से जीवन टिका है। यदि शक्तियाँ न रहेगीं तो जीवन भी न रहेगा। वह भी सड़कर ससार से बिदा हो जायगा; किन्तु इस ओर कौन ध्यान देता है? कौन शरीर-विज्ञान की इन बारीकियों को समझने की चेष्टा करता है? यद्यपि हमारा धर्म-शास्त्र, हमारी धार्मिक पुस्तकें इन बातो से भरी हुई पड़ी हैं! हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए उनमें ज्ञान का मार्ग भी दिखला दिया है; किन्तु अशिक्षा और कुशिक्षा के प्रभाव से हम उन बातों पर ध्यान नही देते और न उनसे किसी प्रकार का ज्ञान ही प्राप्त करते हैं। यदि हम उन पर ध्यान देने लगें; उनके बताये हुए शरीर-विज्ञान विषयक नियमो के अनुसार कार्य करने लगें तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारी दुर्दशा के बादल हमारे भाग्याकाश से अलग हो जायँ। भगवान

श्रीकृष्ण ने क्या ही अच्छा कहा है कि यदि संसार मे ज्ञान का आलोक फैल जाय तो संसार के सम्पूर्ण असत् कार्य अपने-आप विनष्ट हो जायँ। देखिए:—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ —गीता

वास्तव मे ज्ञान ही ससार में सब कुछ है। ज्ञानहीन मनुष्य ससार में निःसार-सा मालूम होता है। मनुष्य होकर यदि ज्ञान से शून्य हुआ तो उसमे और पशुओ में कोई अन्तर नहीं रह जाता। पशु भी जीव है, पर उसमें ज्ञान नही—बोलने की शक्ति नही, इसीलिए संसार मे उपयोगी होते हुए भी वह अनुपयोगी के नाम से पुकारा जाता है। किन्तु मानव-जीवन का यह उद्देश्य नहीं है। उसका संसार में अस्तित्व है। कहना चाहिए, उसी से ससार का विकास होता है। इसीलिए उसे ज्ञानी होना अत्यन्त आवश्यक है। उसे एक आविष्कारक की भाँति ज्ञान के अन्तराल तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए। धर्म-शास्त्रो से, प्राचीन पुस्तको और आदर्श ग्रन्थो तथा उपदेशको द्वारा वह भली भाँति अपने आवश्यक ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। पर हम इससे भी वंचित हैं! सदियो की ग़ुलामी के कारण हमारे हृदय से अपनी सस्कृति का अभिमान उठ गया है। आज प्राचीन ऋषियों के वाक्य हमे थोथे और निःसार मालूम होते हैं। हम रोगी होने पर किसी विदेशी डाक्टर की सलाह मानकर झट कुनैन की गोली खाने और मदिरा तक पान करने के लिए तैयार हो जाते हैं; किन्तु भारतीय आरोग्य शास्त्रानुसार उसी रोग के लिए एक अधेले की दवा करना अपनी हीनता समझते हैं। यद्यपि वँह उससे अच्छी है; किन्तु उस पर से हमारा विश्वास उठ गया है। इसलिए धर्म-शास्त्र और प्राचीन वैद्यक-शास्त्र तो हमारे दिमाग़ से

ज्ञान का महत्त्व

दूर हो गये हैं। अब रह गई उपदेशकों की बात। उपदेशक भी प्रायः ज्ञान से शून्य ही होते हैं। वे आज कुछ कहते हैं तो कल ठीक उसके विपरीत।

फिर हमारा क्या कर्त्तव्य है? जब हम हर एक ओर से ज्ञान प्राप्त करने मे निरूपाय हो गए है तो क्या इसी प्रकार हमें अपनी मानवी-शक्तियों को विनष्ट करना चाहिए, इसी प्रकार व्यभिचार और असंयम की भावना में पड़कर अपने को बर्बाद करना चाहिए? नहीं, हम मनुष्य हैं। मानवी कर्तव्य हमारे पीछे लगा हुआ है। भगवान ने मनुष्य होने के नाते हमें ज्ञान की अतुल सम्पत्ति प्रदान की है। वह हम से नहीं विलग हो सकती—वह ईश्वर की दी हुई वस्तु है। यदि हम तनिक स्थिरता से सोचें और विचार से काम लें तो हमारी आँखों के सामने सहज ही हमारे कर्तव्य नाचने लगेंगे। उन्हीं कर्तव्यो से मानव-जाति का विकास और उपकार हो सकता है। उनके अनुसार कार्य करने से न हमारे जीवन का शीघ्र विनाश होगा और न ससार हमारी हँसी ही कर सकेगा। किसी भारतीय विद्वान ने कहा है—"हमारे शरीर में विवेकरूपी श्रीकृष्ण, प्रवृत्ति और निवृत्ति नाम के चचल घोड़ो की बागडोर मजबूती से पकड़े हुए, प्रतिदिन उदासी और दुःखी अर्जुन रूपी मन को गीता का उपदेश सुनाया करते है।" कितनी सुन्दर और सच्ची कल्पना है! इसमें सन्देह नही कि हमारा मन ज्ञान का भंडार है। यदि हम विचार से काम लें तो हमारा ज्ञानमय मन ही हमे पाप-पथ पर जाने से रोकेगा—वर्जित करेगा।

हमारा कर्तव्य

प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान का सहारा लेना चाहिए। ज्ञान ही उसका उपदेशक और नेता है। पर ज्ञानरूपी नेता को प्रगट करने के लिए, विश्वास की आवश्यकता होती है। बिना विश्वास के सच्चा ज्ञान कभी प्रगट नहीं होता। इसके लिए ईश्वर का एक उदाहरण ही पर्याप्त है। ईश्वर अलक्ष्य है। उसे किसी ने देखा नही; किन्तु केवल एक विश्वास है। इसीलिए कहा जाता है कि मन में ज्ञान को जगाने

के पहले सारे संशयों को दूर कर देना चाहिए। संशय के दूर होने के साथ-ही-साथ ज्ञान अपने आप जग जायगा। यदि हम मनुष्य हैं तो हमें अपने इस प्राकृतिक ढग से ज्ञान को जगाने का उसी तरह अवश्य प्रयत्न करना चाहिए जिस भाँति शरीर की रक्षा के लिए अन्न अत्यन्त आवश्यक है। यदि हमारे ज्ञानरूपी सारथी ने हमारे मनरूपी घोड़े को अच्छी तरह पकड़ रक्खा है तो वह कभी व्यभिचार और पाप की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। उसके सदाचार के चाबुक हमें सदैव विवश किये रहेंगे। फिर उस समय हमारे जीवन का अस्तित्त्व पाप में न जल सकेंगे; हमारे शरीर की शक्तियाँ जवानी में ही हमें छोड़कर न चली जायँगी; हम दुनियाँ में कुछ काम कर सकेंगे और ससार मरने पर उसके लिए हमारा ऋणी रहेगा।

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

प्राचीन काल मे, भारत की इसी पवित्र भूमि मे ऐसे बहुत से प्राणी थे जिन्होंने शरीर की अवस्थाओ को भी अपने वश में कर लिया था; अपने अखण्ड प्रताप से सारे संसार तक को चमत्कृत कर दिया था। पर इसका क्या कारण था? वे भी तो आदमी थे! हमारी ही भाँति उनके भी दो पैर और दो हाथ थे; किन्तु वे हमारी तरह अज्ञान न थे। उनकी मानसिक शक्तियाँ, अशिक्षा और अन्ध भावना के अन्धकार में नहीं पड़ी थीं। उन्होंने अपने प्राकृतिक ज्ञान को जगाकर अपने हृदय में मानवी-शक्तियो का संचय कर लिया था। उनका ब्रह्मचर्य इतना बढ़ा-चढ़ा हुआ था कि उसके प्रताप से लोग काँप जाते थे। मानव शरीर में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-धारण ही एक अद्भुत बल है। यही उसका तेज है, यही उसका अस्तित्त्व है। जिसने ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करके अपने को शक्तिमान बना लिया, उसके लिए संसार में किसी दूसरी शक्ति की आवश्यकता नहीं। वह अपनी केवल इसी एक शक्ति से सारे ससार को हिला सकता है! महाभारत के वीर-पुंगव बाल-ब्रह्मचारी भीष्म का नाम अभी

किसी को भूला न होगा; वीर-केसरी हनूमान का नाम अभी लोगों की जबान ही पर होगा। इन दोनों महावीरों ने अपने इसी ब्रह्मचर्य-शक्ति से समर में बड़े-बड़े वीरों तक के हृदय को दहला दिया था! स्वयं भगवान कृष्ण को भीष्म और श्री रामचन्द्र को हनूमान की वीरता पर आश्चर्य करना पड़ा था। पर आज ब्रह्मचर्य की वह शक्ति भारत से लुप्त हो गई है। अनेक सदियों से अब भीष्म और हनूमान-जैसा कोई वीर नहीं दिखाई देता। बल्कि इसके प्रतिकूल लोग कायर और डरपोक होते जा रहे हैं। नौजवान अपनी युवावस्था और बालक अपनी बाल्यावस्था ही में निस्तेज और साहस शून्य दिखाई देते हैं। विद्यार्थी समाज अलग अप्राकृतिक व्यभिचारों का शिकार बनकर अपने को अग्नि-कुण्ड में झोंकता जा रहा है। ब्रह्मचर्य का वह स्वर्गिक तेज किसी की आकृति पर दृष्टिगोचर नहीं होता। कोई क्षय-रोग से पीड़ित है तो कोई तपेदिक से। किसी का शरीर वीर्य के अभाव में खोखला हो गया है तो कोई अप्राकृतिक मैथुन के दोषों का शिकार बनकर चारपाई पर पड़ा-पड़ा जीवन की घड़ियाँ गिन रहा है। किन्तु इसके प्रतीकार का कोई उपाय नहीं; इसके विरोध की किसी में शक्ति नहीं।

राज्यक्ष्मा और क्षय-रोग का तो आज घर-घर में निवास है। छोटे-छोटे बच्चे तक इसमें पकड़े हुए देखे जाते हैं। छोटी-छोटी बालिकाओं और किशोर बालकों तक को तपेदिक के महारोग ने सता रक्खा है। ऐसा कोई पुरुष नहीं, जो क्षय रोग में आग्रस्त न हो। शरीर की सभी शक्तियाँ विनष्ट हो गई हैं। मानसिक शक्तियों का भी प्रायः लोप-सा हो गया है।

जहाँ एक ओर पतन के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर एक समाज कुछ जाग भी चला है। वह इसके विरोध में आन्दोलन भी करने लगा है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय के आलोचना-पूर्ण लेख भी लिखे जाने लगे हैं। किन्तु उसमें भी पाश्चात्य

सभ्यता की बू है—वे उसीके अनुसार भारतीय युवकों का सुधार करना चाहते हैं। परन्तु भारत ऐसे धार्मिक देश को पाश्चात्य जगत् का आदर्श ऊँचा नहीं उठा सकता ! इसके लिए भारत का वह प्राचीन वैदिक आदर्श ही सर्वोत्तम है, जिसने एक समय सारे संसार में अपना डंका बजा दिया था।

एक युग वह था, जब भारत के विद्यार्थी-समाज ने अपने ज्ञान की शक्तियों से सारे संसार को आश्चर्य मे डाल दिया था। इस लिए आज भी उनके शरीर के अन्दर ब्रह्मचर्य का अखण्ड तेज होना चाहिए। परन्तु वर्तमान स्थिति में ब्रह्मचर्य-पालन युनिवर्सिटियो और कालेजों के विद्यार्थियो से नहीं हो सकता। इसके लिए तो प्राचीन ऋषि-कुल और गुरु कुल ही आदर्श स्वरूप हैं। इनकी स्थापना आवश्यक है। इसके साथ ही प्रत्येक माता-पिता का यही कर्तव्य है कि वह अपने बालकों का सुधार करे और उनको उचित मार्ग पर लाकर उनके हृदय में सदाचार और सत्य की ऐसी शिक्षाएँ भर दे जिनसे उनके जीवन का विकास हो। माता-पिता बालकों के दैनिक कार्यों पर दृष्टिपात करें और उन्हें दुर्गुणो से बचाने की चिंता में प्रयत्नशील रहे तो बालक अपने प्राकृतिक गुणों से सारे राष्ट्र की वह सम्पत्ति हो सकते हैं जिस पर राष्ट्र अभिमान कर सकता है।

दूसरा अध्याय

ब्रह्मचर्य क्या है ?

भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य की महिमा अत्यन्त प्राचीन है। वह उन्नति का युग अभी आँखों के सामने से हटा नही है, जब भारत की आर्य-जाति ने एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक अपनी विजय का डंका बजा दिया था। वीरता, विद्वत्ता, धर्म-प्रियता, न्याय और सत्य-शीलता-जैसा कोई भी जीवनोपयोगी विषय नहीं बचा था जिसमे आर्यों ने प्रसिद्धि—कीर्ति न प्राप्त की हो। यह सब ब्रह्मचर्य का प्रताप था! ब्रह्मचर्य से कोई भी जाति, कोई भी समाज और कोई भी राष्ट्र संसार मे अपने को ऊँचा उठा सकता है। ब्रह्मचर्य ही तो शक्ति का पिता है। वही समाज और राष्ट्र को अपनी गोद मे लेकर उसका पालन करता है। जिस समाज में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं, वह कभी संसार मे उन्नत नही हो सकता। भारतवर्ष इसका एक सच्चा उदाहरण है। आज भी वही भारतवर्ष है और उसका वही अन्न और वायु है। पर, अब भारतवर्ष मे अर्जुन की भाँति वीर नहीं दिखाई देते; लक्ष्मण—जैसे त्यागी और वीर पुरुष दृष्टिपथ में नहीं आते! इसका क्या कारण है? भारत के निवासियों ने अपने मूल व्रत—ब्रह्मचर्य को छोड़ दिया है। उनके शरीर से वीर्य की शक्तियाँ निकल गई हैं। उनके प्राचीन ऋषिकुल और गुरुकुल उजड़ गये हैं। विद्यार्थी, बाल्यावस्था ही में अप्राकृतिक मैथुनो द्वारा अपने को निस्तेज और उद्यमहीन बना रहे हैं। फिर कहाँ से अर्जुन और भीम का आविर्भाव होगा? कहाँ से लक्ष्मण और भरत की सृष्टि

ब्रह्मचर्य का प्रभाव

होगी ? समाज के ये ही बच्चे तो लक्ष्मण और भरत बन सकते हैं। इन्हीं से तो अर्जुन होने की आशा की जा सकती है। किन्तु ये तो जर्जर, निस्तेज, कायर और असाहसी हैं; फिर इनसे राष्ट्र के कल्याण की आशा कैसी ?

मानव-शरीर में वीर्य ही प्रधान वस्तु है। इसीसे ब्रह्मचर्य की परिभाषा करते हुए शास्त्रकारो ने लिखा है:—"वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्।"

ब्रह्मचर्य की परिभाषा

अर्थात् वीर्य का धारण करना ही ब्रह्मचर्य है। 'वीर्य' शब्द से इसी प्रकार के और कई शाब्दिक अर्थ प्रगट होते हैं; जैसे—शौर्य, तेज, उत्साह और साहस। वीर्य इन सबो का उत्पादक है। जिसने अपने शरीर में स्थित वीर्य को रोक रक्खा है; जिसके शरीर का वीर्य स्खलित और विकृत नही हुआ है; जिसने सयम से उसे अपने वश मे कर लिया है; उसमें शक्ति, साहस और तेज के साथ ही अत्यन्त ज्ञान भी होता है। उसका मस्तिष्क सदैव फूल की तरह विहँसता रहता है; चित्त प्रकाश और शक्ति से जगमगाता-सा रहता है। संसार का कोई भी काम उसके लिए कठिन नहीं होता। वह अपने वीर्य की अद्भुत शक्ति से चारो ओर अपने लिए रास्ता साफ किये रहता है। रोग तो उसके पास आते ही नही। इस प्रकार वह अपने वीर्य का सचयकर संसार में सदा विजयी बना रहता है।

किन्तु वीर्य है क्या वस्तु ? जिसकी सत्ता में ससार की सारी शक्तियाँ समाई हुई हैं और जो ससार को ससार का नाम देता है; वह है क्या चीज ! कैसे और कहाँ पैदा होता है ? इस सबध मे सुश्रुत ने लिखा है:—

वीर्य क्या है ?

रसाद्रक्तं ततो मास मासान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः॥
शुक्रं सौम्य सित स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भबीज वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः॥

ओजस्थ तेजो धातूनां शुक्रान्भाना पर स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति निबन्धनम् ॥

रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है। शुक्र का रंग सफेद और स्निग्ध होता है। वह गर्भ का बीज-स्वरूप, शरीर का सार और जीव के जीवन का प्रधान आश्रय है। रस से शुक्र तक सात धातुओं के तेज को ओज कहते हैं। यद्यपि इसका केन्द्र हृदय ही है; किन्तु यह समस्त शरीर मे फैलकर उसकी रक्षा करता है।

शरीर में वीर्य का महत्त्व

शुक्र ही शरीर मे प्रधान वस्तु है। यही तेज का पुंज और शक्ति का भाडार है। जब तक शरीर मे शुक्र रहेगा, तब तक उसमे शक्ति और ओज रहेगा। शुक्र के विनष्ट हो जाने पर ओज अपने आप नष्ट हो जायगा। ओज को ब्रह्मतेज के नाम से भी पुकारा गया है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसी को 'हिउमान मैग्निटिज्म' के नाम से सम्बोधित किया है। उनका भी कथन है कि केवल इसी पदार्थ से सम्पूर्ण शरीर की रक्षा होती है। जब शरीर में इसकी कमी हो जाती है या हमारी अज्ञानता से वह झुलस जाता है तो शरीर सूखे काठ की तरह नीरस हो जाता है; न उसमे सौन्दर्य रह जाता है और न शक्ति। ऊपर से अनेक रोगों का आक्रमण आरंभ हो जाता है। संसार के किसी काम में मन नहीं लगता। चित्त सदा उदासीन और आलसी बना रहता है। भाई-बन्धु, माता-पिता सभी तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगते हैं। इसीलिए एक जर्मन डाकटर ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है—संसार एक समर-भूमि है। मनुष्य उसमें संसार की परिस्थितियों के साथ लड़ने के लिए भेजा जाता है। यदि उसके शरीर में शक्ति रहती है; यदि उसका हृदय तेज और ओज से भरा रहता है तो वह उन पर विजय प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के शरीर में शक्ति, ब्रह्मचर्य

से आती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को वीर्य-रक्षा करके ब्रह्मचारी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्राचीन काल मे, भारतवर्ष में ब्रह्मचारी बनने के अत्यन्त प्रबल साधन थे। बालको को भी ब्रह्मचारी बनने की शिक्षा दी जाती थी। वे नौ वर्ष के पश्चात् ही गुरुकुल में भेज दिये जाते थे और वहाँ अपनी पच्चीस-छब्बीस वर्ष की अवस्था तक रहते थे। इतनी उम्र मे, एक बार भी उनके शरीर का वीर्य स्खलित नहीं हो पाता था। वे पूरे ब्रह्मचारी रहते थे। इसके बाद पूर्ण पंडित बनकर वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। इनसे जो सन्तान पैदा होती थी वह अत्यन्त बली और बहादुर होती थी।

परन्तु आज तो जमाना ही दूसरा है। चारों ओर कुशिक्षा और मूर्खता का बाजार गर्म है। विद्यार्थी अपने अध्ययन-काल ही मे अपने शरीर के वीर्य को पानी की भाँति बहा देते हैं। अनेक दुर्गुणो के शिकार बनकर वे अपने को बर्बाद कर डालते हैं। जब वे गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करते हैं तब उनका शरीर निर्जीव, मुख कुम्हलाया हुआ और वीर्य-कोष बिलकुल खाली-सा रहता है। फिर उनकी पैदा की हुई सन्तान क्यो न निर्बल होगी ? क्यो न वह थोड़े ही दिनों मे रोगों का शिकार बनकर काल के गाल में चली जायगी ? सन्तान तो माता-पिता का दूसरा स्वरूप होती है। जब माता-पिता ही निर्बल हैं, तब सन्तान कहाँ से बलिष्ठ होगी ? बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है—संयम से वीर्य-धारण करने की ज़रूरत है। वीर्य से सन्तान की उत्पत्ति होती है; उसी मे उस भावी जीव का सारा अंश समाविष्ट रहता है। यदि वीर्य बलिष्ठ होता है; यदि उसके जीवाणु हमारी अज्ञानता से नष्ट नहीं हो गये हैं तो सन्तान अवश्य बलिष्ठ होगी। उसमें अवश्य वैसी ही शक्तियाँ होंगी जैसी एक दिन भारतीय बालको मे हुआ करती थीं। इसलिये प्रत्येक सन्तान इच्छुक गृहस्थ को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए। और अपने बालको

को भी ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी तथा दिलानी चाहिए।

ब्रह्मचर्य से केवल बलिष्ठ सन्तान का निर्माण ही नहीं होता; वरन् उससे जीवन को मुक्ति भी मिलती है। कारण शास्त्रकारों ने लिखा है कि—

न तपस्तपइत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्द्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

ब्रह्मचर्य अर्थात वीर्य-धारण ही संसार में सबसे अच्छी तपस्या है इस तपस्या में जिन्होंने पूर्णसिद्धि प्राप्त कर ली है, वे मनुष्य-रूप में देवता हैं। उन्होंने मृत्यु को भी अपने वश में कर लिया है। संसार की वस्तुएँ उनकी इच्छा के आधीन हैं। वे बड़े-बड़े अद्भुत कार्यों को भी थोड़े ही समय में कर डालने की क्षमता रखते हैं। यही कारण है कि परशुराम, हनूमान और भीष्म ने अपने पराक्रम से सारे संसार को हिला दिया था! हनूमान ने पर्वत को लाकर राम के सामने रख दिया था! यह सब ब्रह्मचर्य का ही अद्भुत प्रताप था। इसी के बल पर वे इन अद्भुत कार्यों को पूरा कर सके थे।

विद्वानों के मत—प्राचीन काल से, भारतीय विद्वानों ने ब्रह्मचर्य के ऊपर अनेकों ग्रंथ लिखे थे; किन्तु उनमें बहुत से अब अप्राप्य हैं। फिर भी संस्कृत के अवशेष ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा पाई जाती है। योगशास्त्र में लिखा है—

मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते विन्दुधारणम्॥

अर्थात् शुक्रपात मृत्यु और शुक्र-धारण करना ही जीवन है। अतएव योगियों को शुक्र-धारण का प्रयत्न करना चाहिए। आगे चल-कर उसी में फिर लिखा गया है—

जायते म्रियते लोको विन्दुना नात्र संशयः।
एतज् ज्ञात्वा सदा योगी विन्दुधारणमाचरेत्॥

अर्थात् विन्दु से ही जीवन की उत्पत्ति और उसका विनाश

होता है। इसलिए योगियों को यत्नपूर्वक उसका अनुष्ठान करना चाहिये।

ऋग्वेद में लिखा है—मनुष्य बिना ब्रह्मचर्य धारण किये कभी भी पूर्ण आयुवाला नहीं हो सकता। इसी प्रकार यजुर्वेद का भी निर्देश है कि चारों आश्रमों के यथाविधि कर्तव्य पालन के लिए ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करना नितान्त आवश्यक है। भगवान शंकर ने कहा है—ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम तप है। अखंड ब्रह्मचर्य-व्रत-व्रती पुरुष देवता कहलाता है। उसे मनुष्य समझना भूल है।

इसी प्रकार प्राचीन ऋषियों और विद्वानो के कुछ विचार इस तरह हैं।

"हे निष्पाप! ब्रह्मचर्य से ही संसार की विद्यमानता है। मूल आधार के नाश होने पर ही वस्तु का विनाश होता है; अन्यथा नहीं।"

—महर्षि वशिष्ठ

"देवता, मनुष्य और राक्षस सब के लिए ब्रह्मचर्य अमृतरूप है। मनुष्य की मनोभिलाषाएँ ब्रह्मचर्य की निष्ठा से ही पूर्ण हो सकती हैं।" —ब्रह्मा

"मुक्ति का दृढ़ सोपान ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्याश्रम के सुधार से सब क्रियाएँ पूर्ण और सफल हो जाती हैं।" —दक्ष

"ब्रह्मचर्य से मनुष्य दिव्यता को प्राप्त करता है। शरीर के त्यागने पर उसे मोक्ष मिलता है।" —गर्ग

"हे जीव! ब्रह्मचर्य रूपी सुधानिधि तेरे पास है। उसकी प्रतिष्ठा से अमर बन! निराश मत हो। ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन से मनुष्यता को सार्थक बनाने का उद्योग करो।" —श्रुति

जिस प्रकार हमारा संस्कृत-साहित्य ब्रह्मचर्य की महिमा से भरा पड़ा है उसी प्रकार विदेशी विद्वानों ने भी ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे कई सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने भी बड़े जोरदार शब्दों में मानव-समुदाय से अपील की है कि वे संयमी बनकर ब्रह्मचर्य के

पुजारी बनें। यहाँ हम कुछ विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ दे रहे हैं—

अँग्रेज डाक्टर लुइस ने एक स्थान पर लिखा है—"ससार के सभी सुविज्ञ पडितो ने एक मत से स्वीकार किया है कि शरीर का सार वीर्य है और उसकी रक्षा के लिए प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचारी बनना अत्यन्त आवश्यक है। कारण, बिना ब्रह्मचर्य के मानव-शरीर की शक्तियाँ धूल मे मिल जाती हैं और उनका किसी रूप में विकास नहीं हो पाता।" एक दूसरे डाक्टर ने जिसका नाम निकोलस है, लिखा है—"चिकित्सा और शरीर-विज्ञान-शास्त्र के द्वारा यह अच्छी तरह प्रमाणित हो गया है कि मनुष्यों के शरीर की वह शक्ति जिसके बल पर उनका जीवन टिका रहता है; उन्हीं के रक्त से तैयार होता है। जिसका जीवन पवित्र है; जिसने व्यभिचार की अग्नि में अपने को डालकर झुलसा नही दिया है; उसके शरीर का रक्त पवित्र रहकर गुण युक्त वीर्य का निर्माण करता है। उसका मस्तिष्क प्रसन्न, माँसपेशियाँ बलिष्ट और हृदय हर्षोत्फुल्ल रहता है। कारण, मनुष्य के शरीर का सर्वोत्तम शुक्र ही उसको उद्यमशील, तेजस्वी, साहसी और मेधावी बनाता है। और इसके प्रतिकूल विदूषित शुक्र मनुष्य को निर्बल, असाहसी और कायर बनाता है; जिससे उसकी बुद्धि चंचल और अस्थिर होती है। ससार के किसी भी काम में उसका मन नही लगता। यही नहीं, बल्कि वीर्य को पानी की तरह बहानेवाले के शरीर का भी विनाश शीघ्र हो जाता है। आयु भी धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है। आँखें नीली-पीली हो जाती हैं। देखने की शक्ति भी जाती रहती है। इन्द्रियाँ विकृत और शिथिल पड़ जाती हैं। अनेक प्रकार के भयङ्कर रोग जीवन के चारो ओर घूमने लगते हैं। वैद्यो और डाक्टरों की शरण मे जाने पर भी रोगों से पिंड नही छूटता। जीवन भार-जैसा हो जाता है। अन्त में बड़ी कठिन और रोमाञ्चकारी विपत्तियों का सामना करने के बाद असमय में ही उस अभागे का महाविनाश हो जाता है।"

इसी प्रकार संसार के सभी विद्वानों ने मानव-जगत् से ब्रह्मचर्य

की अपील की है। सभी समझदार व्यक्तियों ने यह बताया है कि जीवन-रक्षा के लिए वीर्य-रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। बिना ब्रह्मचर्य के वीर्यरक्षा हो नहीं सकती। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य ही जीवन और जीवन ही ब्रह्मचर्य है—ऐसा सब आचार्यों की सम्मति है।

नियम-पालन

हिन्दू-शास्त्रानुसार मानव-जीवन चार भागो में विभक्त है। ये भाग प्रचलित भाषा में आश्रम के नाम से पुकारे जाते हैं। इन चारो आश्रमों के नाम यह हैं—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चारो अवस्थाओ में ब्रह्मचर्य की अवस्था ही अत्यन्त उत्तम और उपयोगी है। केवल इसी एक अवस्था के ऊपर अन्य तीनो अवस्थाएँ निर्भर करती हैं। जो पुरुष सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य के पथ पर चल कर अपने हृदय में शक्ति का पुंज भर लेता है, वह अन्य तीन अवस्थाओ में कभी पराजय की चोट नही खाता। कारण, ब्रह्मचर्य से शरीर और आयु की पुष्टि होती है। गृहस्थाश्रम के लिए इन शक्तियों का होना अनिवार्य-सा है। अतएव जो मनुष्य किसी भी अवस्था में सदाचारमय जीवन बिताना चाहते हैं; जो आध्यात्मिक तथा शारीरिक उन्नति के द्वारा अपने कल्याण के साथ ही साथ ससार का भी कल्याण करना चाहते हैं; उन्हें ब्रह्मचर्य-मंत्र का अवश्य जाप करना चाहिए। अपने विद्यार्थी-सन्तानो को भी ब्रह्मचर्य के अवलम्बन के लिए तैयार करना चाहिए। यहाँ हम उन नियमों का व्याख्या-पूर्वक उल्लेख कर रहे हैं जिनके पालन से ब्रह्मचर्य की साधना भलीभाँति सम्पादित हो सकती है।

प्रातःकाल का कार्य

सूर्योदय के पहले अपनी चारपाई छोड़ दो। पश्चात् शीतल जल के छींटों से अपने मुख और आँखो को भली प्रकार धो लो। मल-मूत्र का परित्याग करो। मिट्टी या जल से हाथ तथा शौच-पात्र को साफ करो। शौच के वस्त्र को बदलकर दूसरा कपड़ा पहन लो। हाथ और पैर को अच्छी तरह धो डालो। फिर मुख-मज्जन की तैयारी

करो। इसके लिए आजकल शहरों में अनेक प्रकार के सुगन्धित और उपयोगी मञ्जन बिकते हैं। पर, वे सबको नहीं मिल सकते। इसलिए दन्त-धोवन के लिए दाँतुन ही अत्यन्त उपयोगी है। इसका प्रयोग प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य कर सकते हैं। दाँतुन नीम या बबूल की हो। दाँतुन करते समय मुख का पानी ज़मीन पर ही गिरने देना चाहिए। यदि दाँतुन करने के पहले थोड़ा-सा सरसो का तेल और महीन नमक दाँतो में मल लें, तो अत्यन्त गुणकारी होता है। इससे दाँतो के रोग नष्ट हो जाते हैं, दुर्गन्धि भी जाती रहती है और दाँत भी स्वच्छ और साफ हो जाते हैं।

स्नान-विधि

नहाना अत्यन्त उपयोगी है। इससे शरीर स्वच्छ हो जाता है। उक्त आवश्यक कर्मों से निवृत्त होने के पश्चात् ९ बजे के लगभग स्नान करना चाहिए। स्नान के पहले शरीर में सरसों का तेल लगाना चाहिए। तेल हाथ-पाँव की अँगुलियो, नाक तथा कान में भी लगाया जाय। स्नान के लिए, चाहे कोई भी ऋतु हो, शीतल और पवित्र जल ही अत्यन्त उत्तम है। सर्दी के दिनों में, खाँसी-जुकाम या ज्वर के समय केवल शरीर को अँगोछ लेना चाहिए। स्नान के बाद किसी मोटे; किन्तु भीगे हुए वस्त्र से शरीर को खूब रगड़कर पोंछ लेना चाहिए। इससे शरीर के रोम-छिद्रो में घुसे हुए मल के नन्हे-नन्हे कण भी निकल जाते हैं। स्नान के पश्चात् तुरन्त साफ़ और धुले हुये वस्त्र का उपयोग करना चाहिए। दिन में दो-तीन बार इसी तरह शरीर को भीगे हुए वस्त्र से पोछ कर वस्त्र परिवर्तन करना चाहिए।

स्नान करने के पश्चात् उत्तम रीति से घर में हवन करना चाहिए। हवन की सामग्री मे सभी आवश्यक वस्तुएँ मिली हो। हवन बिलकुल पवित्र और शुद्ध मन से करना चाहिए। हवन के लिए अलग ही एक दूसरा कमरा हो। हवन-अग्नि के धुएँ से सारे घर की दुर्गंधि साफ हो जाती है। साथ ही चित्त की मलिनता भी जाती रहती है।

आहार और ब्रह्मचर्य का गुरुतर सम्बन्ध है। शरीर और मन के लिए जो कुछ ग्रहण किया जाता है, उसका ही नाम आहार है। शरीर के लिए अनेक प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ ग्रहण की जाती हैं, अनेक प्रकार के मिष्ठान्न खाये जाते हैं। इसी प्रकार मन का भी भोजन है। मन रूप, रस, गध, चिन्ता आदि रसों को प्रतिदिन खाया करता है। इसलिए जिस प्रकार शरीर के आहार में सावधानी रखनी चाहिए, उसी प्रकार मन के आहार मे भी सतर्कता से काम लेना चाहिए। दोनों का भोजन प्रत्येक अवस्था में शुद्ध और सात्विक होना चाहिए। पर, यह भी उन दोनों के अन्योन्याश्रय के ही ऊपर निर्भर करता है। यदि भोजन सात्विक होगा, यदि उसमें विदूषित वस्तुएँ न रहेंगी तो उसके खाने से अवश्य सात्विक बुद्धि उत्पन्न होगी और बिना सात्विक बुद्धि के सात्विक भोजन न हो सकेगा। इसलिए मनुष्य को दोनें ओर से सात्विकता की चेष्टा करनी चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब वह अपने मन से कुचिंता को दूर कर दे लोभ को छोड़ दे। लोभ और कुचिंता का त्याग किये बिना किसी की शुद्ध भोजन की ओर प्रवृत्ति नहीं हो सकती और बिना शुद्ध भोजन के न तो शरीर की पुष्टि हो सकती है और न स्वास्थ्य ही सबल हो सकता है।

आहार-नियम

जिस भोजन से आयु, बल और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, उसे सात्विक भोजन कहते हैं, जैसे—दूध, घी, शक्कर इत्यादि। अत्यन्त कड़ा, अत्यन्त सड़ा-गला, बासी, तीक्ष्ण और दुर्गंध युक्त भोजन तामसिक कहा जाता है। ऐसा भोजन कभी न करना चाहिए। इससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, मानवी तेज जाता रहता है और वीर्य-धारण की शक्ति भी प्रायः क्षीण-सी हो जाती है। इसलिए सदैव सात्विक और ताजा ही आहार करना चाहिए। किन्तु अधिक सात्विक भोजन भी लाभ प्रिय नहीं होता। भूख से अधिक भोजन करना सदैव हानिकारक होता है। इसलिए सात्विक भोजन के लिए भी मिताहारी होने की आवश्यकता है।

भोजन, दिन में केवल दो बार करना चाहिए। एक बार मध्याह्न-काल में भूख लगने पर जलपान भी किया जा सकता है, किन्तु जल-पान मे फलों को छोड़ कर अन्य कोई दूसरी वस्तु न हो। फल भी ताज़े निम्नलिखित हो, जैसे—नारियल, बेल, आम, कदली, सतरा, लीची, काली जामुन, सेव, नाशपाती इत्यादि। इसके प्रतिकूल तरबूज़-जैसे फलों का उपयोग हानिकारक होता है।

मनुष्य प्रतिदिन संसार के सैकड़ो मनुष्यो से मिलता रहता है। प्रतिदिन वह सैकड़ों से बात-चीत करता और उनके साथ व्यवहार करता है। इसलिए उसे चाहिए कि वह अपने व्यवहारों को पवित्र और सर्व-व्यापी बनाये। किसी के दिल मे उसके आचरण से ग्लानि उत्पन्न न हो। अपने व्यवहारो की कुशलता से उसे संसार में सहानुभूति की कमी न रहे, इसके लिए निम्नांकित विधान काम मे लाये जा सकते हैं—

व्यवहार की चिंता

१. किसी के चित्त को किसी प्रकार भी दुखाना न चाहिए।

२. झूठी बात कभी न बोले।

३. यथासाध्य मौनावलम्बन धारण करना चाहिए।

४. दूसरों की वस्तु का अपहरण करना पाप समझे।

५. अपनी वर्तमान अवस्था से सदा सन्तुष्ट रहना चाहिए। किसी की बढ़ती हुई उन्नति को देख कर मन में ईर्ष्या का भाव न लाना चाहिए। पराये लोगो को भी अपना आत्मीय बन्धु ही समझे। किसी को दुःखी देख कर उसके प्रति दया प्रकट करे। किसी को पुण्य-कार्य करते हुए देख कर उसे उत्साह और साहस दिलाए।

६. यदि कोई नुकसान करे अथवा आघात करने के लिए भी तैयार हो तो उसके प्रति रोष प्रकट न करे—उसके कार्यों से विचलित न होकर उससे उसी प्रकार बातें करे जैसे अपने छोटे बन्धु के साथ किया जाता है।

७. देवता हमारी भलाई करते हैं—इस दृढ़ विश्वास को कभी

अपने चित्त से अलग न करे। कारण, देवता के प्रति विश्वास करना ईश्वर के प्रति विश्वास करना है। इससे मनुष्य का ज्ञान-धर्म बढ़ेगा और वह दुष्ट की सङ्गति करने में हिचकिचाएगा।

८. सेवा वृत्ति के पुजारी बनो। नीच-से नीच श्रेणी के मनुष्य के अन्दर भी तुम ईश्वर की ज्योति देखो। यदि तुम किसी के नौकर हो तो अपने स्वामी का काम उसी प्रकार करो जिस प्रकार तुम अपना काम करते हो। संसार मे कर्तव्य ही प्रधान वस्तु है। जो दिन रात अपने कर्तव्य के पथ पर चलता रहता है, उसे संसार की परिस्थितियाँ नहीं सतातीं और सांसारिक मनुष्य उसे प्यार भी करते हैं। इसलिए तुम संसार मे कर्तव्यशील बनो।

तीसरा अध्याय

स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य

स्वास्थ्य जीवन की सम्पत्ति है। जिस मनुष्य ने अपने इस सम्पत्ति की रक्षा की है, वह संसार में कभी दुखी नहीं हो सकता। उसके सामने कभी यह प्रश्न आ ही नहीं सकता कि वह अपनी जीवन-तरणी को संसार मे कैसे और किस प्रकार चलावे ? यदि संसार-सागर मे भयङ्कर लहरें भी उठती होंगी; यदि तूफान के झोंके चारों ओर से डटकर उसके विनाश की तैयारी भी करते होगे; तो भी वह अपनी नाव को उसमे छोड़ देगा। कारण, उसके पास स्वास्थ्य की सम्पत्ति है। उसका शरीर साहस और उद्योग से भरा है। उसके मन में विजय की कामनाएँ हलचल मचा रही हैं। फिर वह क्यों डरने लगा ? क्यो संसार से पीछे क़दम हटाने लगा ? क़दम तो हटाते हैं वे, जिन्होने अपनी अज्ञानता से अपना स्वास्थ्य चौपट कर दिया है; जिन्होने स्वास्थ्य को सबल करने वाले अपने शरीर के वीर्य को पानी की तरह बहा कर अपने शरीर को खोखला बना दिया है, जिनके शरीर में पुरुषत्व और मर्दानगी नाम की कोई चीज शेष नहीं रह गई है। इस लिए प्राचीन शास्त्रकारों ने लिखा है कि स्वास्थ्य ही जीवन है। मनुष्य को अपने इस जीवन की रक्षा मे सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

स्वास्थ्य की महत्त्व

यह सभी चाहते हैं कि हम स्वस्थ रहें; हमारे शरीर में कांति और तेज रहे। अमीर तथा गरीब सभी इसकी कामना करते हैं। मृत्यु के मुख में जाने वाला एक बूढ़ा भी दिन-रात अपने स्वास्थ्य के लिए भगवान से प्रार्थना करता है। माता-पिता अपने बच्चों की आरोग्यता के

लिए मिन्नतें मानते हैं; किन्तु इससे क्या उन्हें स्वास्थ्य मिल जाता है? क्या उनके शरीर के रोग उन्हें छोड़ कर भाग जाते हैं और वे उद्यमी और उत्साही वन जाते हैं? नही, ऐसा कभी नहीं होता। स्वास्थ्य भगवान की सम्पत्ति नही है। भगवान उसका मालिक नही है। उसका मालिक तो मनुष्य स्वयं अपने ही है। वह स्वयं अपने स्वास्थ्य का ज़िम्मेदार है। यदि वह चाहे तो अपने स्वास्थ्य को सफल बना सकता है और वही उसका विनाश भी कर सकता है। ये दोनों शक्तियाँ उसी के हाथ में हैं। इस सम्बन्ध में जर्मन के एक विद्वान डाक्टर ने लिखा है कि—'मनुष्य स्वतन्त्र है। यद्यपि उसके ऊपर एक अद्भुत शक्ति सदैव शासन करती है; किन्तु उसने मनुष्य को प्रकृति की ओर से बिलकुल स्वाधीन-सा कर दिया है। इसमें सन्देह नही कि प्रत्येक मनुष्य इस संसार का राजा है। राजा से तात्पर्य यह है कि वह अपने को इस योग्य वना सकता है कि संसार की अवस्थाएँ उसके वशीभूत हो जायँ। स्वास्थ्य ही उसका सहायक है और वह अपने स्वास्थ्य का स्वयं निर्माता है।'

'सूक्ति' में भी इसीके सम्वन्ध मे लिखा-हुआ है कि:—

धर्मार्थकाममोक्षाणा आरोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगावस्याऽपहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

"संसार में चारो पुरुषार्थों का मूल कारण स्वास्थ्य ही है। और रोग उन चारो का विनाश कर डालते हैं। यही नहीं; किन्तु जीवन का भी प्रायः सर्वनाश हो जाता है।" सचमुच सूक्ति का यह कथन विलकुल ठीक है। ससार में आरोग्य ही सब कुछ है। वही सुखो की जड और मुक्ति का मूल भी है। रोगी होकर हम संसार मे कुछ नहीं कर सकते हम न तो संसार का काम कर सकते हैं और न अपने उस लोक का ही कल्याण कर सकते हैं। जिस विलास मे फँसकर स्वास्थ्य का नाश किया जाता है उसकी सामग्रियां भी रोगी होने पर कांटे की भाँति

चुभने लगती हैं। अतः सुन्दर स्वास्थ्य मनुष्य को प्रत्येक अवस्था के लिए आवश्यक है।

स्वास्थ्य शरीर के लिए आवश्यक है। उससे शरीर में तेज, बल और साहस का सञ्चार होता है। किन्तु ऐसे उपयोगी स्वास्थ्य के सुधार की ओर हम बिलकुल ध्यान ही नहीं देते। स्वास्थ्य की भित्ति और अपनी अज्ञानता से उसकी भित्ति को ही गिराने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि थोड़े ही दिनों में हमारे स्वास्थ्य का किला धराशायी हो जाता है। शरीर जीर्ण हो जाता है, बुढ़ापा आ घेरता है, सारी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और असमय मे ही मृत्यु के लक्षण साफ-साफ दिखाई देने लगते हैं। इसलिए स्वास्थ्य की भित्ति को सुदृढ़ करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म और कर्तव्य है। पर, स्वास्थ्य की भित्ति को सबल बनाने के लिए किसी ऐसी शक्ति की आवश्यकता होती है, जिसको प्रत्येक मनुष्य अपने शरीर ही में उत्पन्न कर सकता है। चाहे करोड़ो रुपये खर्च करो, लाखों की सम्पत्ति लुटा दो, पर, यदि शरीर मे वह शक्ति नहीं पैदा की गई, तो फ़िर कभी भी सुन्दर स्वास्थ्य नही प्राप्त किया जा सकता।

वह शक्ति, वीर्य-धारण की शक्ति है। और वीर्य-धारण ही ब्रह्मचर्य है। किसी डाक्टर ने कहा है—वीर्य शरीर का राजा है। सचमुच वह शरीर का राजा है। यदि उसका शासन ठीक रहेगा, यदि वह नियम-पूर्वक मानव नामक शक्ति के द्वारा संचालित किया जायगा तो फिर कभी स्वास्थ्य की भित्ति कमज़ोर नहीं हो सकेगी। वह दिन पर दिन सुदृढ़ ही होती जायगी और एक दिन मनुष्य इसी शक्ति से वह काम कर देगा जिसे देखकर सारा ससार आश्चर्य प्रगट करेगा। किन्तु आज चारो ओर स्वास्थ्य का अभाव है। जिसे नवयुवक को देखिए, जिस पुरुष और स्त्री की ओर निगाह डालिए; उसी के स्वास्थ्य की दीवारें गिरती हुई नज़र आती हैं। न उनमें सत्य का बल है और न तेज की शक्ति। ब्रह्मचर्य के पूर्ण अभाव मे उनके सारे मान की सम्पत्ति नष्ट हो गई है।

मनुष्य समाज और राष्ट्र का अंग होता है। कहना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य से समाज और राष्ट्र की रचना होती है। जब भारतीय स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य गिर गया है, जब उनके अन्दर से ब्रह्मचर्य की शक्ति निकल गई है, जब वे काम की अग्नि मे अपना सर्वस्व स्वाहा कर चुके हैं, तो फिर समाज और राष्ट्र ही कैसे स्वस्थ और सबल हो सकता है? जिस समाज के छोटे-छोटे बच्चे तक काम के शिकार हो रहे हैं; जिस समाज के करोड़ो स्त्री-पुरुप पाप के मार्ग पर अपने जीवन का अस्तित्व वेंच रहे हैं, उस समाज की दुर्गति को छोड़कर और क्या दशा हो सकती है? समाज तो तभी सबल और शक्तिमान होगा, जब उसकी गोद में खेलने वाले बच्चे-बच्चे के स्वास्थ्य की भित्ति सुदृढ़ होगी। और यह तभी होगा जब वे ब्रह्मचारी बनेंगे, जब वे वीर्य के मूल्य को समझ कर उसे पानी की भाँति न बहाएँगे।

संसार कर्मक्षेत्र है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सैकड़ो परिस्थितियाँ आती और जाती रहती हैं। मनुष्य को प्रति दिन इनका सामना करना पड़ता है। यदि मनुष्य के शरीर में बल रहता है,

शरीर का बल

यदि उसके हृदय मे साहस रहता है, तो वह इन परिस्थितियों की परवाह न करके निरन्तर जीवन-मार्ग में अपना कदम आगे बढ़ाता जाता है। कुसमय हो, या सुसमय; रात हो या दिन; प्रकाश हो या अँधेरा; किन्तु वह कभी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होता—कभी कठिनाइयों को अपने सामने नही आने देता। यदि कभी वे आ भी जाती हैं तो वह उनसे डरकर हताश नहीं बन जाता—अपने कर्तव्य से मुँह मोड़कर कापुरुष नही हो जाता। उसका जीवन-संसार भी सुख से भरा रहता है। रोग और व्याधियाँ उसके शरीर को स्पर्श नही कर पातीं। शरीर तेज से चमकता रहता है। मुख पर एक ज्योति-सी खेलती रहती है। और यदि शरीर मे बल न हो, हृदय में शक्तियों की कमी हो, तो इसके बिलकुल प्रतिकूल परिणाम होता है। संसार की आपत्तियाँ उसे सदा घेरे रहती

हैं। साहस और शौर्य के अभाव में वह बेचारा आकुल होकर या तो आत्मघात कर लेता है या संसार से दूर हट अलग रहने की कोशिश करता है।

शारीरिक बल किसे कहते हैं ? यह कहाँ और किससे उत्पन्न होकर शरीर मे नवजीवन का संचार करता है ? जिससे मनुष्य चलता-फिरता है, जिससे वह भोजन प्राप्त करता है, जिससे संसार की परिस्थितियों को वह अपने अनुकूल बनाता है, जिससे वह अपने पीछे चलने वाले कुटुम्ब की सहायता करता है और जिससे वह संसार के क्षेत्र में अपने मानव-जीवन को सार्थक करता है—उसी को शारीरिक बल कहते हैं। यह मनुष्य के शरीर ही मे पैदा होता है और उसका यथेष्ट परिणाम मे पैदा करना मनुष्य ही का काम है। यदि मनुष्य चाहे तो महाबली बन सकता है। यदि वह चाहे तो महावीर की भाँति पराक्रमी बनकर क्षण भर मे द्रोणगिरि पर्वत को उठाकर किसी के सामने रख सकता है और यदि वह चाहे तो कायर तथा नपुंसक भी बन सकता है।

लोग आश्चर्य करेंगे! पर भारत का माध्यमिक युग का इतिहास इसका साक्षी है। उस समय भारत के बच्चे-बच्चे का शरीर अगाध बल से भरा रहता था। प्रत्येक नवजवान अपने हृदय में संसार तक को हिला देने की शक्ति रखता था। वह भरत बच्चा ही तो था, जिसने वन-केसरी की चोटी पकड़ अपनी माता के सामने लाकर खड़ा कर दिया था! वह अभिमन्यु कैशोर बालक ही तो था जिसने महाभारत के भयंकर युद्ध में अपने धनुष टंकार से सप्त महारथियो के हृदय को हिला दिया था; आखिर वे भी तो मनुष्य ही के बच्चे थे। उनका भी शरीर तो हमारी ही भाँति हड्डो और माँस से बना था; किन्तु वे हमारी भाँति कायरो की सन्तान न थे। हमारी ही तरह उनके बच्चे नही थे जिन्होने अपने शरीर के निष्कर्ष को बनाने के लिए रक्त को पानी की तरह बहा दिया था। उनके माता-पिता बली थे। फिर वे क्यो न बली

होते ? क्यों न उनका शारीरिक बल संसार में सबसे बढ़ा-चढ़ा रहता ?

शारीरिक बल को बढ़ाने का मुख्य साधन वीर्य है। वीर्य शरीर का निष्कर्ष है। जिस प्रकार बिना तेल के दीपक अपने प्रकाश को नहीं रख सकता, उसी प्रकार शरीर बिना वीर्य के अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। वीर्य ही साहस है; वीर्य ही शक्ति है और वीर्य ही विकास है। इसकी रक्षा हनूमान ने की थी। इसी की शक्ति से भीष्म ने वाणों की शय्या पर भी आनन्द-पूर्वक शयन किया था। जो अपने वीर्य की रक्षा में सदैव दत्तचित्त रहता है, वही ससार में बलवान और सामर्थ्यवान बन सकता है, वही संसार की विपत्तियों का सामना कर अपने तथा अपने कुटुम्ब को सुखी बना सकता है। अतः शारीरिक शक्ति के लिए वीर्य की रक्षा करना अनिवार्य है।

शारीरिक-बल की भाँति आत्मबल भी मनुष्यों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बल्कि यह कहना चाहिए कि संसार में यही बल सबसे बड़ा और प्रभावशाली है। प्राचीन काल में भारतवर्ष आत्मबल का भंडार था। राजा-रंक, ऋषि-मुनि सभी इस बल से प्रभावित थे। बड़े-बड़े दैवी कार्यों को क्षण-मात्र में पूरा कर डालना उनके बायें हाथ का खेल था। बड़ी-बड़ी प्रतिद्वंदी शक्तियों को परास्त कर देना उनके लिए आसान-सा था। जहाँ एक ओर शारीरिक बल उनकी नसों में जीवन दौड़ा रहा था, वहाँ दूसरी ओर आत्मबल भी उन्हें साहसी और उद्यमी बनाये हुए था। कठिन-से-कठिन संकट आ पड़े; भयंकर से भयंकर विपत्तियाँ सिर पर मँडराने लगें पर, वे अपने साहस को नहीं छोड़ते थे। उनकी आत्मा उन्हें इतना दृढ़ बनाये रहती थी कि वे उनसे कभी भी विचलित नहीं होते थे—कभी भी पराजय स्वीकार कर अपने उत्थान की आशा नहीं छोड़ देते थे!

आत्मबल

यह आत्मबल ही का प्रभाव था कि जब कैकेयी ने कोप-भवन में बैठकर दशरथ से यह आग्रह किया कि श्रीरामचन्द्र को राजगद्दी न दी

जाय, राजगद्दी उसके पुत्र भरत को हो और राम चौदह वर्ष के लिए कठोर वन मे निर्वासित कर दिये जायँ। तब राम के कानो में भी खबर पड़ी। पर क्या मजाल कि मस्तक पर शिकन आने पावे। उन्होने हँस-कर हर्ष से महाराज दशरथ से प्रार्थना की—सेवक राम वन जाने के लिए खड़ा है, आज्ञा दीजिए। यह है आत्मबल! इतने विशाल राज के प्रभुत्व को छोड़कर वन मे जाना क्या साधारण बात थी? क्या श्रीराम-चन्द्र के साथ लक्ष्मण का वह त्याग अपूर्व नहीं था? क्या भाई के वियोग मे भटकते हुए भरत ने अपने आत्मबल का उदाहरण नहीं दिया था? दुनिया आज भी उस पर गर्व करती है। पर, आज देश मे ऐसा कौन राजकुमार है जो भाई के लिए अपना विशाल राज्य छोड़ने के लिए तैयार होगा? ऐसा कौन भाई है, जो भाई के सुखो के लिए अपने राज्य-सुख को पैरो से ठुकरा देगा! आज तो भाई-भाई आपस मे लड़ रहे हैं। एक दूसरे का गला मरोड़ रहे हैं। एक-एक बीघे भूमि के लिए लाठी-चोटी का संग्राम हो रहा है।

पर यह क्यो? इसीलिए कि उनमें आत्मबल था। हम मे वह नहीं है। उन्होने ब्रह्मचर्य के अखंड व्रत से अपने को प्रभावित कर लिया था। उनके शरीर का कोना-कोना एक अद्भुत शक्ति से जगमगा रहा था। वे जीवन को समझते थे। ब्रह्मचर्य ने उनके मानस और मस्तिष्क मे वह ज्योति भर दी थी, जिसे हम मनुष्यता के नाम से पुकारते हैं; किन्तु हम अपने आत्मबल को खो चुके हैं। छोटी-छोटी विपत्तियो से विचलित हो जाना हमारा धर्म-सा हो गया है। हम एक ऐसे वातावरण मे पड़े हैं; एक ऐसी परिस्थिति मे जबर्दस्ती डाल दिये गये हैं, जहाँ ब्रह्मचर्य का पूर्ण अभाव है। न तो हमे ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है और न यह बताया जाता है कि मानव-जीवन के लिए वही एक शक्ति है। इसी से हम अन्धकार मे पड़े हैं। इसीसे हम आज कायर और कापुरुष बने हैं। इसीसे हम उन्ही श्रीराम की सन्तान होकर भी उनके समान नहीं हो पाते।

आज भी जो इस परिस्थिति को अतिक्रमण कर बाहर निकल गया है; जिसने ब्रह्मचर्य की मर्यादा अच्छी तरह समझ ली है, वह संसार के सामने आत्मबल का उदाहरण है। कौन नहीं जानता कि आज जेल की दीवारो के अन्दर रहने पर भी महात्मा गांधी सारे संसार को हिला रहे हैं। उनकी मुख से निकली हुई एक-एक बात को सारा संसार उसी प्रकार सुन रहा है, जैसे कोई पैगम्बर या धार्मिक गुरू की बातों को सुनता है। यह किसका प्रभाव है? केवल ब्रह्मचर्य का। महात्मा गांधी ने अपने थोड़े काल के ब्रह्मचर्य से अपने को इतना आत्मबली बना लिया है कि बड़ी बड़ी विपत्तियाँ भी उनके सामने हेय-सी हैं। बड़ी-बड़ी बाधाओ को वे केवल मुस्करा कर ही टाल दिया करते हैं। भारत के प्रत्येक बच्चे को महात्माजी के इस उत्कट उदाहरण को सत्य मान-कर ब्रह्मचारी बनने की कोशिश करनी चाहिए।

संसार मे एक ओर सम्पत्ति है—भोग-विलास की सामग्रियाँ हैं और दूसरी ओर जीव हैं। जीवो में मानव जीवन ही सर्वश्रेष्ठ और

दीर्घायु

अत्युत्तम है। इसी का अस्तित्त्व चारो ओर दिखाई देता है। इसी के उपभोग के लिए, प्रकृति की ओर से ये सम्पूर्ण सामग्रियाँ भी मिली हुई हैं। प्रत्येक मनुष्य इनका अधिकारी है। उनके नियन्ता की कदाचित् यही अभि-लाषा रहती है कि मनुष्य इन सामग्रियो का उपभोग कर अपने जीवन का विकास करे और उस विकास से ससार के विकास मे सहायता मिले। इस लिए यह निश्चय-सा है कि मनुष्य को इन वस्तुओं के उप-भोग तथा ससार के विकास के लिए अपने जीवन को उचित समय तक स्थायी रखना पड़ेगा। प्रकृति की ओर से मनुष्य की आयु भी अधिक काल की ही होती है। अर्थात् उसके अनुसार उसे सौ वर्ष से पहले कभी नहीं मरना चाहिए। किन्तु आज कौन सौ वर्ष तक पहुँचता है, किस पर प्रकृति का यह सिद्धान्त लागू होता है? इसका यह तात्पर्य नही कि यह सिद्धान्त झूठा और कल्पित है। नहीं, यह सत्य है। पर,

आयु को स्थायी बनाने तथा बढ़ाने के लिए प्रकृति से हमें जो साधन मिले हैं, उन्हें हम भूल बैठे हैं। फिर क्या यह सम्भव है कि हम उस सिद्धान्त के पथ पर चल सकते हैं? नहीं, संसार में साधन ही तो सर्वस्व है। जब साधन ही नहीं तो उस पर चलने की आशा कैसी?

उन साधनो मे सबसे प्रभावशाली साधन ब्रह्मचर्य है। इससे स्वास्थ्य और आत्मबल के बढ़ने के साथ ही साथ आयु की भी वृद्धि होती है। एक स्थान पर लिखा है—

दीर्घायुर्ब्रह्मचर्यया।

अर्थात् ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होती है। इसी का पृष्टपेषण यजुर्वेद के ये दो श्लोक भी कर रहे हैं—

यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं,
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मानुषेषु कृणुते दीर्घमायुः।

जो अपने शरीर में वीर्य को सुरक्षित रखता है, वह देवताओं में दीर्घायु प्राप्त करता है और वह साधारण लोगो में भी दीर्घजीवी होता है। अपने में वीर्य संचित करने वाला पुरुष, ज्ञानी हो या मूर्ख, दोनों अवस्थाओं में दीर्घजीवन प्राप्त करता है।

न तन्द्रा क्षांसि पिशाश्चरन्ति,
देवानामोजः प्रथमज ह्येतत्।

जो पुरुष वीर्य की रक्षा करता है, उसे राक्षस और पिशाच दुख नही दे सकते। यह वीर्य ही विद्वान लोगों का आत्मतेज या दिव्य गुणों का सारांश है। यह उनमें सबसे पहले उत्पन्न होता है।

अब तो यह बात भली भाँति विदित हो गई कि दीर्घायु के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई चाहे कि वह वासना की अग्नि में अपने को बर्बाद करता रहे और साथ ही दीर्घजीवी भी बने तो यह संभव नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे के

प्रतिकूल हैं। शरीर का जो ओज है; जिससे आयु का निर्माण होता है; यदि वही न रहेगा तो आयु कैसे बढ़ेगी ? कैसे मनुष्य अपने जीवन को स्थायी बना सकेगा ? आज देश के लाखों नवयुवक असमय मे ही मुर्झाकर काल के गाल में जा रहे हैं। करोड़ों बालिकाएँ अपनी कच्ची आयु में ही माता के सिंहासन पर बैठकर एक धुँधली ज्योति पैदा कर इस ससार से बिदा हो रही हैं। इसका क्या कारण है ? क्या इसका यह कारण है कि विधाता ने इनके भाग्य में यही लिखा था ? क्या वे इतने ही दिनो के लिए सचमुच ससार में आई थीं ? नहीं, किसी कली पर यदि कोई उसके शैशव काल ही में हाथ रख दे, तो क्या उसके धक्के से वह मुर्झा न जायगी ? वह कमज़ोर होकर हवा की गहरी थपड़ियाँ खाकर धूल में गिर न पड़ेगी ? इसी प्रकार बालिकाओं और बालको के सम्बन्ध मे भी समझना चाहिए। देश मे बाल विवाह की प्रथा ज़ोरो से प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार छोटे-छोटे बालकों के साथ सोलह-सोलह वर्ष की युवती का गठबधन होते देखा जाता है। दूसरी ओर छोटी-छोटी कुमारियाँ भी बड़े बड़े बूढ़ो और पूर्ण वयस्क मनुष्यो के साथ ब्याही जाती हैं। एक ओर आग है, दूसरी ओर तिनका। क्या नाश और महाविनाश को छोड़कर इसका कोई दूसरा परिणाम निकल सकता है ?

प्राचीन काल में इसी भारतवर्ष में लोग दो-दो सौ वर्ष तक बराबर जीवित रहते थे। क्या वे मनुष्य नहीं देवता थे ? पर नहीं, उनमें ब्रह्मचर्य का बल था। ब्रह्मचर्य व्रत-पालन से उनके शरीर की शक्तियाँ दिन-दिन दूनी होती जाती थीं। एक कहावत है—'साठा तब पाठा'। सचमुच उस समय साठ वर्ष की अवस्था में लोग पूर्ण युवक समझे जाते थे। तभी तो वे डेढ़-दो सौ वर्ष तक जीवित रहते थे। पर, आज तो कोई पचास वर्ष के आगे भी नहीं जाता ! पच्चीस और तीस वर्ष की अवस्था ही में जीवन की इहलीला समाप्त हो जाती है। लोग कहते हैं—यह कलिकाल है; कलिकाल में मनुष्य थोड़े ही समय तक

जीवित रहता है! कितनी अज्ञानता की बात है! भला प्रकृति का नियम भी कहीं असत्य होता है! आज भी जो ब्रह्मचारी होगा, जो अपने शरीर को सयम की डोरी से कसकर बांधे रहेगा; इसमें सन्देह नहीं कि उसकी आयु सौ डेढ़ सौ वर्ष से कम न होगी। अभी थोड़े ही दिन हुए मद्रास के आस-पास का रहनेवाला एक बूढ़ा एक सौ पैंतीस वर्ष की अवस्था का होकर मरा है। उसके सम्बन्ध में पता लगाने पर यह मालूम हुआ है कि वह ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करनेवाला पूर्ण संयमी था। इसके अतिरिक्त यहाँ हम एक ऐसी तालीका दे रहे हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि सयमी और ब्रह्मचारी ही अधिक दिनो तक जीवित रह सकते हैं। आज इस युग मे भी यदि कोई सयम और ब्रह्मचर्य-व्रत का सहारा ले तो वह भी चिर दिनो तक जीवित रह सकेगा।

तालीका इस प्रकार है—भीष्म पितामह १७०, महर्षि व्यास १५७, वासुदेव १५५, भगवान् बुद्ध १४०, धृतराष्ट्र १३५, श्रीकृष्ण १२६, रामानन्द गिरि १२५, महात्मा कबीर १२०, युगराज लोहकार ११५, स्वामी सच्चिदानन्द १००, महाकवि मतिराम ९९, गोस्वामी तुलसीदास ९१, यतीन्द्रनाथ ठाकुर ८५, सूरदास ८०, और मद्रास का वह बूढा १३५ वर्ष तक जीवित थे। अन्तिम बूढ़ा इस युग में ससार का सब से प्राचीन मनुष्य था। इनके अतिरिक्त इस समय देश में अनेको ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिनकी अवस्था अस्सी वर्ष से अधिक है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह दीर्घजीवन के लिए ब्रह्मचारी और संयमी बने।

साहस—शक्ति दोनो शब्द एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसमें साहस होगा उसी मे शक्ति होगी। जिसमे शक्ति होगी उसी में साहस होगा। दोनो एक साथ रहते हैं और दोनो मानव-जीवन के लिए बड़े उपयोगी हैं। मनुष्य इस संसार में बिना साहस—शक्ति के एक तिनका भी नहीं उठा सकता। दूसरों के जीवन को कौन कहे, अपने जीवन का भी भली प्रकार निर्वाह नहीं कर सकता। उपनिषद में लिखा है—

साहस और शक्ति

बलेनवपृथ्वीतिष्ठति, बलेनान्तरिक्षम् ।
वीर्यमेवबलम्, बलमेववीर्यम् ॥

"शक्ति से ही पृथ्वी ठहरती है और शक्ति से ही आकाश भी ठहरा हुआ है। वीर्य ही शक्ति है और शक्ति का नाम ही वीर्य है।'

सचमुच वीर्य साहस और शक्ति का भांडार है। इसी मे वह खजाना भरा हुआ है जिसे पाकर मनुष्य 'मनुष्य' हो जाता है और देवता भी उनकी शक्तियों को देखकर तरसने लगते हैं। यदि कोई ससार में कुछ काम करना चाहता है; अपने मानवी गुणों के विकास से संसार को चमत्कृत करना चाहता है, तो उसे सबसे पहले ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य उसे एक ऐसी शक्ति प्रदान करेगा जिसके बल पर दुश्मनो के बीच में वह अकेला भी सबको पछाड़ सकता है—उन्हें अभिभूत कर सकता है। प्राचीनकाल मे भीष्मपिता-मह ने क्या किया था? उन्होने इसी ब्रह्मचर्य की शक्ति से महाभारत-सग्राम मे अपने शत्रुओ को विचलित-सा कर दिया था। उनकी बाण-वर्षा देखकर बड़े-बड़े दिग्गज महारथी भी काँप उठते थे। हनूमान की वीरता भी क्या कम थी? अकेले रावण-जैसे सुभट के दर्बार में जाना और उसकी नगरी को जला खाककर देना क्या साधारण बात थी? राम और लक्ष्मण की शक्ति क्या ससार में अतुलनीय नहीं है? जगत की विपत्तियों को सिर पर लाद कर उन्होने किस तरह रावण का महाविनाश किया? क्या इससे यह बात नहीं प्रगट होती कि अकेला ब्रह्मचारी, संसार की भयंकर-से-भयंकर शक्ति को रौंदने का अपने में साहस रखता है।

अभी कल की बात है। भारत के कोने-कोने मे एक संन्यासी के नाम का डंका पिट गया था। वह संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती था। कौन नहीं जानता कि स्वामी दयानन्द के अनेक जानी दुश्मन थे। अनेक उनके जीवन के विनाश के लिए अवसर और मार्ग खोजते रहते थे। पर क्या हुआ? क्या स्वामीजी का कोई कुछ कर सका!

स्वामीजी निर्भय चित्त से उस स्थान में भी गये जहाँ उनके अनेक दुश्मन थे; जहाँ प्रत्येक घड़ी उनकी मृत्यु की आशंका बनी रहती थी। वहां भी स्वामीजी ने अपने मत का प्रचार किया। हज़ारों विपक्षियों के बीच में खड़े होकर उन्होंने व्याख्यान दिया। सैकड़ों प्रतिद्वन्द्वियों को अपने तर्कों से आक्रान्त किया। पर, उनका कोई कुछ बिगाड़ न सका यह सब केवल ब्रह्मचर्य की प्रभुता थी। ब्रह्मचर्य का तेज उनके शरीर में समाया हुआ था। साहस और शक्ति का रग-रग में समावेश था। फिर कायर और कुचाली उनका क्या बिगाड़ सकते थे। कहीं पाप भी पुण्य के सम्मुख जाता है!

इस समय भी कई ऐसे महात्मा हैं जो ब्रह्मचर्य के बल पर अद्भुत कार्य कर रहे हैं। इस युग के महापुरुष महात्मा गांधी ने केवल एक सप्ताह के अन्दर ही अपनी ब्रह्मचर्य शक्ति से वह अद्भुत काम कर दिखाया, जिसके अभाव में हिन्दू समाज पंगुल कहा जाता था। सच-मुच ब्रह्मचर्य की शक्ति अनुपम और अजेय है!

चौथा अध्याय

बाल्य-जीवन में सावधानी

बालक और राष्ट्र

बालक राष्ट्र की सम्पत्ति होते हैं। उन्ही के ऊपर देश का उत्थान और पतन निर्भर रहता है। जो देश या समाज, अपने छोटे-छोटे बालको के जीवन की उपेक्षा न करके उनका पूर्णतः ध्यान रखता है, वही भविष्य मे अपने सुखो का सत्-निर्माण कर सकता है—वही उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच कर संसार की सारी शक्तियो को आश्चर्य में डाल सकता है। यही नहीं, वह ससार के सामने एक आदर्श गुरु की भाँति खड़ा होकर सब को माननीय-शास्त्र का सुन्दर उपदेश भी दे सकता है। इसीलिए अमेरिका के एक दार्शनिक विद्वान ने लिखा है—"किसी भी देश के बालक उस देश के प्राण होते हैं। उन्हीं के अन्दर वह शक्ति छिपी रहती है जिससे राष्ट्र और समाज का कल्याण होता है। राष्ट्र और समाज कोई दूसरी वस्तु नहीं; वह उन्ही बालको का एक विकसित, सगठित और प्रौढ स्वरूप है। जब देश के बच्चे सबल होंगे, जब उनका जीवन आदर्श होगा, तब राष्ट्र भी सबल और आदर्श बनेगा। अन्यथा उन्नति के पथ पर जाना उसके लिए अत्यन्त कठिन और दुःसाध्य है।"

वास्तव में अमेरिकन दार्शनिक का यह कथन अक्षरशः सत्य है। संसार की ऊँची-से ऊँची शक्ति भी पहले अपनी बाल्यावस्था में थी। संसार के अनेको महापुरुष भी उसी की गोद से निकले हैं। पहले संसार के जीवों को उसी अवस्था से सामना करना पड़ता है। फिर क्या यह सत्य नहीं है कि उस अवस्था मे जैसा हमारे जीवन का निर्माण

होगा, उसी की छाप हमारे भावी जीवन के सफेद और शून्य चित्रपट पर पड़ेगा और फिर उसी के अनुसार हमारे समाज तथा राष्ट्र का रूप रंग भी बनता-बिगड़ता रहेगा। यदि बाल्यावस्था में, बालकों के जीवन का सुधार किया गया, उन्हें अच्छी परिस्थिति और अच्छे वातावरण में रक्खा गया, तो कभी वे पापी और दुराचारी बनकर अपने राष्ट्र का संहार न करेंगे। बालकों के इसी महत्त्व-पूर्ण जीवन की रक्षा के लिए आज प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में कई बाल समितियाँ खुली हुई हैं। यहाँ हम कुछ समितियों का उल्लेख कर रहे हैं जिनसे यह अच्छी तरह विदित हो जायगा कि बालकों का जीवन कितना महत्त्व-पूर्ण और कितना लोकप्रिय है।

बालकों के सुधार-सम्बन्धी इंगलैण्ड, अमेरिका और सोवियट रूस में जितनी समितियाँ और संस्थाएँ हैं, उतनी अन्य किसी भी देश में नहीं हैं। इंगलैण्ड में एक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र में निकली हुई तालीका के अनुसार बच्चों के सुधार के लिए दो सौ के लगभग संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं में वहाँ 'बच्चों के क्लब' का बड़ा नाम है। अनेकों बालक इस क्लब के सदस्य हैं। इस क्लब का प्रत्येक सप्ताह में अधिवेशन होता है और उसमें अच्छे-अच्छे विद्वानों द्वारा उपदेश भी दिलाये जाते हैं। उसी अंग्रेज़ी-पत्र के द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि इस क्लब के बालक-सदस्य अपनी पूर्ण अवस्था में बड़े विद्वान् तथा उन्नति-प्रेमी हुए हैं। अमेरिका में भी इसी ढंग की सैकड़ों संस्थाएँ हैं। ये संस्थाएँ बच्चों के पढ़ने योग्य सुन्दर साहित्य का भी निर्माण करती हैं।

सोवियट रूस बच्चों की रक्षा करने में सबसे आगे बढ़ा हुआ है। वहाँ बाल संस्थाएँ भी अधिक हैं और उनके द्वारा बालकों के जीवन को सुन्दर साँचे में ढालने का सराहनीय प्रयत्न किया जाता है। उनमें बच्चों को उनकी शक्ति और प्रवृत्ति के अनुसार योग्य सिपाही, कारीगर, विद्वान, कवि, लेखक, नेता, सम्पादक सभी कुछ बनाया जाता है। अनेक पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। प्रत्येक मास सुन्दर, सरल भाषा में

सैकड़ों पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं। यही कारण है कि आज दिन इंगलैण्ड, अमेरिका और सोवियट रूस संसार में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। इनकी शक्तियों को देखकर दुनिया के सभी लोग काँप रहे हैं; इनकी विज्ञान-आविष्कारक प्रतिभा पर आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं। और उन्हें अपना पथ प्रदर्शक मानकर उनकी सभ्यता का अनुगामी बनने में अभिमान जता रहे हैं।

परन्तु भारतवर्ष अभी तक इस सम्बन्ध में बिलकुल अन्धकार में पड़ा हुआ है। जहाँ तक पता है उसके अनुसार इस अभागे देश में ऐसी कोई प्रभावशाली संस्था नहीं, जिसके द्वारा बालकों का सुधार होता हो। ऐसी कोई समिति नहीं, जिसका एकमात्र उद्देश्य बालकों की रक्षा करनी हो। बाल-साहित्य भी प्रायः कुछ भी नहीं है। न तो बालकों को अच्छी बातें बताई जाती हैं और न उनके स्वास्थ्य का ही कुछ प्रबन्ध किया जाता है। माता-पिता भी प्रायः इस ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं। वे वर्ष दो-वर्ष के अन्दर दो चार बच्चे पैदा करना अवश्य जानते हैं; पर यह नहीं जानते कि बालकों का पालन पोषण किस प्रकार किया जाय; उन्हें किस तरह की हवा और परिस्थिति में रखा जाय? इसका परिणाम यह होता है कि बालक या तो असमय में ही उनकी गोद को सूनी कर देते हैं या बड़े होकर कुचाली, पापी और दुर्व्यसिनी बन जाते हैं। जब भारतीय बच्चों की यह दशा है तब भारत का समाज या राष्ट्र कैसे सबल होगा? कैसे वह विपत्तियों के शिकंजे से अपना पिंड छुड़ा सकेगा? यदि वह पतन के गड्ढे में गिरकर अपने सर्वनाश की घड़ियाँ गिन रहा है; यदि वह दूसरे के पैरों से कुचला जाकर करुणापूर्ण सिसकियाँ भर रहा है, तो आश्चर्य क्या? कोई भी देश अपनी बाल-सम्पत्ति को बर्बाद कर पतन के गर्त में जा सकता है।

बच्चों की रक्षा का भार समाज, राष्ट्र और बच्चों के माता-पिता पर है; परन्तु इनमें सबसे अधिक हाथ उनके माता-पिता का ही रहता है।

माता-पिता बच्चों का केवल पालन-पोषण करते हैं और उन्हें थोड़ी-सी बातें समझाते हैं; किन्तु उन्हें अधिक शिक्षित और सुसभ्य बनाने वाला तो राष्ट्र और समाज ही है। राष्ट्र और समाज की ओर से जहाँ अनेक क़ानून रहते हैं, वहाँ एक ओर ऐसे भी मानवी विधान होने चाहिए, जिनके अनुसार बालकों का पढ़ना-लिखना, शिल्प-कला सीखना और व्यायाम करना अनिवार्य-सा हो। बालकों के लिए ऐसे विधान जिस देश में हैं, वहाँ के बालक अधिक शिक्षित और सभ्य होते हैं। संसार के सामने युवक होकर आने पर उनके सामने यह प्रश्न नहीं आता कि हम क्या करें और किस ओर जायँ? उनका हृदय शिक्षा से भरा रहता है। उनका मस्तिष्क जीवनोपयोगी बातो से प्रभावित रहता है। वे उसके बल पर ऐसे काम मे लग जाते हैं, जिससे उनके कल्याण के साथ ही-साथ उनके समाज और राष्ट्र का भी कल्याण होता है। हमारे देश और समाज को भी उन्हीं राष्ट्रो का अनुकरण करना चाहिए।

बच्चों की रक्षा का भार

आज समाज के अन्दर हाहाकार मच रहा है। राष्ट्र अशान्ति और असन्तोष से छटपटा रहा है। लाखो शिक्षित नवयुवक भी, हड्डी का दुबला ढाँचा लिए हुए दस-दस रुपयों की नौकरियो के लिए सड़कों पर घूमते दिखाई देते हैं। करोड़ों बच्चे प्रतिदिन भूख की ज्वाला से छटपटाकर अपने प्राणो के तन्तुओं को तोड़ रहे है। हजारो स्त्रियाँ फटे-पुराने चिथड़े पहने हुए दर-दर मुट्ठी भर अन्न के लिए पुकार मचा रही हैं। यह सब समाज और राष्ट्र का अपराध है। राष्ट्र ने स्वय अपने को पंगुल बना दिया है। समाज ने स्वय अपने हाथो से इस असन्तोष की नीव डाली है। यदि समाज के द्वारा बालको की सत्-शिक्षा का प्रबन्ध होता; यदि उनके माता पिता पर नियन्त्रण रखकर बालकों को योग्य और सुशिक्षित बनाये जाने का प्रयत्न किया जाता, तो समाज

न आज असन्तोष से जलता और न राष्ट्र इतना जर्जर होता। चारो ओर शान्ति-ही-शान्ति दिखाई देती। प्रत्येक परिवार भलीभाँति सुखी और प्रसन्न रहता, जिस प्रकार कभी राम के राज्य में था! गोस्वामी जी की यह चौपाई उस समय की कितनी महत्ता प्रगट करती है। देखिए—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम-राज्य काहू नहिं व्यापा॥

क्या इससे यह प्रगट नहीं होता कि उस समय समाज के अन्दर सन्तोष था। वह पूर्ण प्रसन्न और सगठित था। वह इतना सगठित था कि दैविक शक्तियाँ भी उसका कुछ बिगाड़ने मे असमर्थ-सी रहती थीं। क्या कारण था? क्या यह नही था कि समाज अपने बच्चो—बालकों की चिन्ता रखता था। उनके जीवन और उनके स्वास्थ्य की परवाह रखता था, उनके विद्यार्थी जीवन को उत्कृष्ट और सुन्दर बनाने में तन्मय रहता था। इसीसे तो राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न-जैसे वीर बालक उस समाज में पैदा हुए थे। इसीसे तो अपने महान् कार्यों से उन्होने सारे संसार को चमत्कृत कर दिया था। इसलिए वर्तमान समाज और राष्ट्र का भी यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपने सुधार के लिए अपनी गोद मे पलनेवाले प्रत्येक बालक का यथासाध्य सुधार करे।

बालकों के प्रति यह तो समाज और राष्ट्र का कर्तव्य हुआ। पर, माता-पिता का कर्तव्य इससे भी गुरुतर और महान् है। बालकों को बनाने और बिगाड़ने का कार्य माता-पिता ही के ऊपर है। यदि माता-पिता चाहें तो बालक सुंदर नागरिक बन सकते हैं। यदि वे चाहे तो बालक वहाँ सहज ही में पहुँच सकते हैं जहाँ पहुँचने से राष्ट्र और समाज का कल्याण होता है। प्राचीन काल में भारतवर्ष के स्त्री पुरुष सुसभ्य और सुशिक्षित होते थे। उनका जीवन उन्नत और प्रभावशाली होता था। वे बालकों के जीवन की मर्यादा को भी भली भाँति समझते थे। इसी से वे सात-

माता-पिता का कर्तव्य

आठ वर्ष की ही अवस्था मे बालको को गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेज देते थे और बालक वहाँ अपनी पच्चीस-छब्बीस वर्ष की अवस्था तक विद्याध्ययन में लगे रहते थे। उस समय तक वे पूर्ण ब्रह्मचारी रहते थे। किसी स्त्री का दर्शन करना तक उनके लिए मुश्किल था। जब वे पूर्ण विद्वान् बन जाते थे तब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।

किन्तु आज के माता-पिता ही भिन्न हैं। आज उनके अन्दर से वह मनोवृत्ति ही निकल गई है। आज वे बालको के जीवन पर ध्यान ही नहीं देते और न उन्हें ब्रह्मचारी तथा सयमी बनाने का उद्योग करते हैं। यदि उद्योग करने के नाते कुछ करते है तो केवल इतना ही कि उनका लड़का कालेज की ऊँची डिगरियाँ प्राप्त कर किसी सम्माननीय पदपर नियुक्त हो जाय। बस, केवल यही एक उनकी अभिलाषा रहती है। वे उनके जीवन की प्रत्येक बात की उपेक्षा कर केवल अपने इसी स्वार्थ-सिद्धि की ओर ध्यान देते हैं। परिणाम यह होता है कि वे माता-पिता की उपेक्षा के कारण दुराचारी और लम्पट बन जाते हैं। अनेक बुराइयाँ उनके शरीर में समा जाती हैं। वे असमय ही अपने शरीर की सार-वस्तु को पानी की तरह बहाने लगते हैं। उनके शरीर का तेज और साहस जाता रहता है। शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। चारों ओर से रोगो का आक्रमण होने लगता है। तपेदिक और राज-यक्ष्मा रोग उनके शरीर मे घुन की तरह लग जाते हैं और वे थोड़े ही दिनों में अपने जीवन की लौकिक-लीला समाप्त कर इस संसार से चल बसते हैं।

माता पिता की इसी थोड़ी-सी असावधानी का यह घातक परिणाम होता है। आज करोडो नवयुवक इसी भाँति निकम्मे और निःसार बनकर प्रति सप्ताह इस संसार से विदा हो रहे हैं। उनके जीवन से इस ससार को क्या लाभ हुआ? उनसे मानव-समुदाय का क्या उपकार हो सका? क्या वे इसीलिए ससार में आये थे कि अपने शरीर के तेज को नष्ट कर असमय में ही इस संसार से विदा हो

जायँ ? नहीं, उनके आने का एक महत् उद्देश्य था। पर, माता-पिता की असावधानी के कारण वे उस उद्देश्य तक पहुँच न सके और बीच में ही अपने भयङ्कर पाप के भार से दबकर जहन्नुम मे चले गये। न तो उनके माता-पिता की अभिलाषा पूरी हुई और न वे अपने मानव-जीवन का कुछ विकास कर सके। हाँ, इतना अवश्य किया कि अपने काले कारनामो का एक बहुत बडा भार पृथ्वी माता की छाती पर रख दिया। यदि पृथ्वी माता, मन ही-मन उस बोझ से दबकर आँसू बहाती हो तो आश्चर्य ही क्या ?

बालक अनभिज्ञ होते हैं। वे यह नही जानते कि किसका साथ अच्छा और किसका बुरा है। स्कूल तथा कालेजो में उनका प्रति दिन

संगति और बालक

सैकडो बालको का साथ हुआ करता है। नित्य वे सैकडों बालको के साथ हँसते बोलते और बातें किया करते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि छोटे-छोटे बालको तक में कभी-कभी काम की इच्छा जागृत हो जाती है। कालेज और ऊँचे दर्जे के तरुण बालकों की तो बात ही दूसरी होती है। उस समय वे क्या करते हैं ? यद्यपि वे काम-विज्ञान नहीं जानते; किन्तु प्रकृति की ओर से दी हुई इन्द्रियाँ उन्हे उसका ज्ञान करा देती हैं और वे आपस में अपनी इन्द्रियों को रगडते तथा मलने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी यह प्रकृति धीरे-धीरे प्रबल होती जाती है और उनमें अनेको दुर्गुण तथा काम-वासना वाली भावनाएँ भर जाती हैं। आज ऐसे अनेक बालक पाये जायँगे जो अपनी काम-पिशाची प्रकृति के कारण अपने हाथों ही अपना सत्यानाश कर रहे हैं। ऐसे बालक शौकीन, उश्रृङ्खल और बहुधा एकान्त-प्रेमी हुआ करते हैं। पढ़ने पढ़ाने में तो उनका चित्त कभी लगता नही। वे एक एक दर्जे मे तीन तीन चार-चार वर्ष तक पड़े रहते हैं। मुख की कान्ति और शरीर का सम्पूर्ण साहस नष्ट हो जाता है। जवानी मे ही बुढ़ापा आ घेरता है और एक दिन वे अपने माता-

पिता की इच्छाओं को धूल मे मिलाकर इस संसार से चल बसते हैं।

ऐसे बालक अपना यह व्यापार किसी हालत में माता-पिता के ऊपर प्रगट नही होने देते। वे उनकी तथा अपने शिक्षकों की आँखों से बचने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु जिन माता-पिताओं के वे कलेजे के टुकड़े हैं, जिनकी सारी आशाएँ उन्ही पर अवलम्बित हैं, उनका क्या यह कर्तव्य नहीं है कि वे बालकों को दुश्चरित्र होने से बचावें? जब वे देखें कि बालक पुष्ट भोजन पाने पर भी मुर्झाया जा रहा है, उसकी आँखें पीली और पलकें नीचे धँसी जा रही हैं, पीठ की रीढ़ें, साफ-साफ ऊपर दिखाई दे रही हैं, तो इनके मूल कारण का पता लगाना क्या उनका कर्तव्य नही है? वे तनिक भी सतर्क होकर काम लें एवं लुक-छिपकर बालक के दैनिक आचरणों तथा उससे मिलने-जुलनेवालों पर ध्यान दें तो इसमे सन्देह नही कि सारा रहस्य खुल जाय और वह सुकुमार बालक आग की भट्ठी मे झुलसने से बच जायँ।

किन्तु माता पिता इस पर ध्यान नहीं देते और बालक कुसङ्ग में पड़कर अपना सब कुछ चौपट कर डालता है। संसार में कुसङ्ग ही तो अनर्थ की जड़ है। इसीसे वे अवस्थाएँ पैदा होती हैं जिनसे मनुष्य संसार मे लांछित और अपमानित होता है। यही नहीं, कभी-कभी उसे बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता है। जेलों मे जाना पड़ता है। फाँसी की तख्तियो पर झूलना पड़ता है। किसी ने कहा है—

वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।

'प्राणों का त्याग देना अच्छा है; किंतु नीचों का सम्पर्क बहुत घातक है।' वास्तव मे बात ऐसी ही है। सारी मनुष्यता नष्ट हो जाती है। न मान-मर्यादा का ध्यान रहता है और न अपने कुल-कानि की। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट सङ्ग जनि देइ बिधाता॥

अब इससे बढ़कर दुष्ट-सङ्गति के सम्बन्ध में दूसरा क्या कहा जा सकता है ? दुष्टों की सङ्गति, इसमें सन्देह नहीं—नर्क से भी बुरी है। इसलिए बालकों को कभी बुरी सङ्गति में न पड़ने देना चाहिए। यदि माता-पिता अपने बालको का सुधार करना चाहते हैं, यदि वे उन्हे उन्नति के प्रकाश में लाकर मनुष्य बनाना चाहते हैं तो कभी उन्हें बुरे लोगों के साथ न बैठने देना चाहिए। इसके प्रतिकूल सत्सङ्ग करने के लिए बालकों को उत्साहित करना चाहिए। सत्सङ्ग मे बैठने-उठने से कई लाभ होते हैं। श्रीशङ्कराचार्य ने सत्सङ्ग के सम्बन्ध में कहा है—

सत्सङ्गत्व निःसङ्गत्व सङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलत्व निश्चलत्वे जीवन्मुक्तः ॥

"अर्थात् सत्सङ्ग से निःसङ्ग की प्राप्ति होती है। निःसङ्ग से विषयों से अप्रीति बढ़ती है। निर्मोह से सत्य का पूर्ण आभास होता है और सत्य के पूर्ण ज्ञान से मनुष्य को मुक्ति मिलती है।" एक दूसरे स्थान पर सत्सङ्ग की महिमा और लिखी हुई है—

सत्सङ्गः परम तीर्थ सत्सङ्गः परम पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्सङ्ग सततं कुरु ॥

"अर्थात् सत्सङ्ग ही परम तीर्थ है। सत्सङ्ग ही उत्कृष्ट पद है। इसलिए सब का परित्याग कर मनसा, वाचा एवं कर्मणा से सत्सङ्ग की सेवा करो।" यह सत्सङ्ग की महिमा है। फिर भला यदि माता-पिता बालकों को सत्सङ्ग में रहने का उपदेश न दें तो उनकी अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

मादक वस्तुओं का प्रभाव

मादक-वस्तुएँ नशीली होती हैं। वैद्यक में उनकी परिभाषा इस प्रकार की गई है—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्य मदकारितदुच्यते।

"अर्थात जिस वस्तु से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो, उसे मादक-वस्तु कहते हैं।" वैद्यक का यह कथन बिल्कुल

सत्य है। मादक-वस्तुओं के सेवन से मनुष्य की बुद्धि का उन्मूलन हो जाता है। उसकी चेतना बिगड़ जाती है। इन्द्रियाँ अधिक लोलुप बन जाती हैं। शरीर की शक्ति जाती रहती है। यही नहीं, वह मादक-वस्तुओं का प्रेमी बनकर ससार के किसी काम का नहीं रह जाता।

मादक-वस्तुओ का आजकल देश में असीम प्रचार है। ऐसा कोई भी शहर और गाँव नही, जहाँ गाँजे, तम्बाकू और अफियून की धुआँ-धार खपत न होती हो। आठ आने पैदा करनेवाला एक मजदूर भी सायङ्काल में गाँजा की दम लगाता है। गाँजा और चरस की भाँति ही भाँग का अत्यधिक प्रचार है। तम्बाकू का तो घर-घर में प्रचलन है। कुटिया से लेकर महलो तक इसका निवास है। एक ओर जहाँ अशिक्षित वर्ग गाँजा, भाँग और अफियून में मस्त हैं, वहाँ दूसरी ओर एक समुदाय सिगरेट और बीड़ियो का शिकार है। तम्बाकू की भाँति बीड़ी का भी भारतवर्ष के कोने-कोने में प्रचार है। छोटे-छोटे बच्चे तक इसे मुँह मे लगाते तथा इसका धुआँ बाहर निकालते हुए देखे जाते हैं। भारतवर्ष की मादक-वस्तुओ और उनके बेहद-प्रचार के सम्बन्ध मे लिखते हुए एक सभ्य अंग्रेज ने लिखा है—'संसार की मृत्यु-संख्या पर जब हम नज़र डालते हैं तो भारत को सबसे आगे बढ़ा हुआ देखकर हमें आश्चर्य होता है। किंतु जब हम भारत के कोने-कोने में नशीली-वस्तुओ का प्रचार और छोटे-छोटे बच्चो तक को उसका शिकार होते हुए देखते हैं तो मेरा यह आश्चर्य दुःख के रूप में बदल जाता है। यदि मैं सत्य कहूँ, तो मुझे निःसंकोच ससार के सामने कहना पड़ेगा कि इस समय संसार के सभी देशों से भारत नशीली-वस्तुओं के सेवन में आगे बढ़ा हुआ है। इसीसे भारतवासी परतंत्र एवं अत्यन्त कमजोर हो गये हैं।

वास्तव मे भारत का सर्वनाश इन्हीं नशीली वस्तुओं से हो रहा है। इन्हीं के द्वारा उसके अन्दर से वह शक्ति निकल गई है जिससे किसी

राष्ट्र का विकास और कल्याण होता है। यह तो सभी जानते हैं कि संसार में ऐसी कोई मादक वस्तु नहीं जिसमें ज़हर का कुछ अंश न हो। इसीलिए प्राचीन भारतीय विज्ञानवेत्ताओ ने यह कह दिया है कि मादक वस्तुओं के सेवन से उसी प्रकार जीवन का धीरे-धीरे विनाश होता है जिस प्रकार तेल के अभाव में दीपक का प्रकाश कम होता जाता है। वास्तव मे मादक वस्तुओं के सेवन से शरीर का वीर्य हत हो जाता है। जिस प्रकार ग्रीष्म का प्रचड उत्ताप जल की सरिता को सुखा देता है, उसी तरह मादक वस्तुएँ वीर्य का सर्वनाश कर डालती हैं। यही कारण है कि मादक वस्तुओं के प्रेमी-मनुष्य, वीर्य और साहस के अभाव में राज-यक्ष्मा रोग के शिकार हो जाते हैं। हमने अपने इतने जीवन-काल में किसी भी गाँजा और चरस-प्रेमी मनुष्य को ऐसा नहीं पाया जिसे भयकर खाँसी न आती हो और जिसके गले से विदूषित मल न गिरता हो। साधुओ को यह खुल्लम-खुल्ला कहते हुए सुना है कि हम नशीली वस्तुओ का इसलिए अधिक सेवन करते हैं जिससे हमारे वीर्य का विनाश हो। बिलकुल सच ! मूर्ख और अनपढ़ साधुओं का यह विज्ञान सत्य से खाली नहीं।

किन्तु फिर भी हम इस ओर ध्यान ही नहीं देते। मादक वस्तुओं के इस विघातक परिणाम को जानकर भी हम उनसे प्रेम करते हैं। हमी नहीं; हम अपने छोटे छोटे बच्चों तक को उनसे प्रेम करते हुए अपनी आँखो से देखते हैं। आज भारत का ऐसा कोई सौभाग्यशाली लड़का नहीं, जो इन नशीली वस्तुओ से अपना पिण्ड छुड़ा सका हो ? ऐसा कोई भी घर नहीं, जहाँ सिगरेट-बीड़ी का धुआँ-धार प्रचार न हो ? अमीर क्या गरीब सभी के सुकुमार बालक इस दुर्व्यसन की अग्नि में अपनी शक्तियों का स्वाहा करते हुए देखे जाते हैं। पर, यह किसका दोष है ? बालकों का या उनके माता-पिता का ? जब माता-पिता ही व्यसनी हैं, जब वे ही गाँजा-भाँग, चरस और बीड़ी-सिगरेटो के प्रेमी बने हुए हैं तो उनकी गोद में पलनेवाले बच्चे क्यो न बनें ? बच्चे तो माता-

पिता ही का अनुकरण करते हैं। जैसा माता-पिता करेंगे, वैसा ही बच्चा भी करेगा और यदि बालक अपने असमय काल ही में इन वस्तुओं का प्रेमी बन जाय तो फिर क्या उसका विकास होगा और क्या वह राष्ट्र का कल्याण कर सकेगा? इसलिए माता-पिता का कर्तव्य है कि वे बालकों को दुर्व्यसनी होने से बचावें। जब वे देखें कि बालक किसी मादक वस्तु की दूकान पर खड़ा है अथवा ऐसे मनुष्य से प्रेमपूर्वक बातें कर रहा है, जो मादक-वस्तुओ का प्रेमी है, तो वे उस पर नियन्त्रण रखना शुरू कर दें। इसके अतिरिक्त वे बालक को इतना पैसा न दें कि वह उनसे छिपकर बाजार में उन वस्तुओ का सेवन कर सके। इससे बालक के जीवन का कल्याण हो सकेगा। वह संयमी और ब्रह्मचारी बनकर अपने को गौरवान्वित कर सकेगा। उसकी ज्ञान-शक्तियाँ भी ठीक रहेगी। फिर उस समय वह जो कुछ करेगा, अच्छा और सराहनीय करेगा। अतः प्रत्येक सन्तान-प्रेमी मनुष्य को चाहिए कि वह अपने बालकों को नशीली वस्तुओ के दुर्व्यसन से बचाये।

बालको का विनाश एक दूसरे ढग से भी होता है। यह ढग अमीरों के ही बालकों पर लागू होता है। प्रायः अमीरो के बालक ही अधिक बिगड़े पाये जाते हैं। और उन्हीं के विचारो तथा कृत्यो से समाज को भयंकर क्षति भी पहुँचती है। इसका एक प्रधान कारण है। वह कारण है बालको के हाथ मे अधिक पैसा देना। माता-पिता की ओर से ये पैसे केवल प्यार के ही कारण मिलते हैं; पर, बालक उनका दुरुपयोग करते हैं। वे उन पैसों से भोग-विलास की सामग्रियाँ तथा गन्दे विचार वाली पुस्तकें खरीदते हैं। बाजार के बने हुये चटपटे और मिठाइयाँ भी खाते हैं। इससे उनका मस्तिष्क बिगड़ जाता है। वे दुराचारी और व्यभिचारी बन जाते हैं। उनमें ऐसे ऐसे घृणित विचारों के रोग समा जाते हैं जो उनका विनाश ही करके छोड़ते हैं। इस स्थान पर हमें एक रूसी कहानी याद आ गई। एक लड़का था। लड़का अमीर

अधिक पैसे

का था। पिता अपने बेटे की जेब सदैव पैसों से भरे रहता था। एक दिन लड़का बाजार में निकला। उसकी दृष्टि एक सुन्दर लड़की पर पड़ी। वह उस पर मोहित हो गया। वह लड़की वेश्या की थी। लड़का उसके पास आने जाने लगा। इसी दुर्व्यसन में बाप के मर जाने पर वह पूर्ण भिखारी हो गया। उसने लिखा है—'मेरे सर्वनाश के कारण मेरे पिता हैं। यदि मेरे पिता मुझे इतने पैसे न देते तो मैं कभी भी भिखारी न होता।' वास्तव मे अधिक पैसे पास में रहने से बालको की प्रकृति बिगड़ जाती है। वे दुर्गुणो के शिकार हो जाते हैं। अतः यदि माता-पिता बालकों का कल्याण चाहते हैं तो वे उनके हाथो में अधिक पैसा भूल कर भी न दें।

———

पाँचवाँ अध्याय

वीर्य की उत्पत्ति

वीर्य का शरीर से सम्बन्ध

वीर्य से शरीर का घनिष्ट सम्बन्ध है। इतना ही नहीं, वरन यह कहना अधिक संगत होगा कि वीर्य ही पर शरीर की दुनिया बसी हुई है। उसी के ऊपर उसका महान् अस्तित्व आबाद है। यदि शरीर से वीर्य नाम का पदार्थ निकल जाय; यदि उसका तेजस्वी प्रभाव इस दुनिया से कूच कर जाय, तो शरीर अस्तित्व-हीन हो जायगा। उसकी सारी शक्तियाँ क्षीण हो जायँगी। अतः जब हमारे शरीर के वीर्य का इतना प्रबल प्रभाव है; उसका इतना महान् अस्तित्व छिपा हुआ है तो हमे यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि वीर्य क्या वस्तु है? वह कब और कहाँ उत्पन्न होता है? कारण, बिना उसे जाने हुए कोई कैसे उसकी अखण्ड महिमा को स्वीकार कर सकता है? कैसे यह निर्विवाद मान सकता है कि वास्तव मे वीर्य ही हमारे शरीर का निष्कर्ष और सार है।

इस संसार मे हमारे लिए अनेक प्रकार की सामग्रियाँ बनी हुई है। उनमें से प्रत्येक का हम अपने जीवन में उपयोग करते हैं। कुछ तो हमारे शरीर ढकने तथा जीवन-सम्बन्धी अन्य उपयोगी आवश्यकताओ की पूर्ति के काम में आती है और कुछ ऐसी हैं जिन्हें खाकर हम अपने शरीर का पोषण करते हैं। ये खाद्य सामग्रियों के नाम से सारे संसार में प्रख्यात हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी का इन्ही के द्वारा काम चलता है। प्रति दिन इन्हीं से प्रत्येक मनुष्य का काम पड़ता है। मनुष्य इन्ही के उपार्जन के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। यह जो संसार में चहल-पहल दिखाई दे रहा है; यह जो चारो ओर

अशान्ति और कार्य-आकुलता की ध्वनि उठ रही है, वह सब इन्हीं भोजन सामग्रियों के लिए। इन्हीं के लिए मजदूर, धूप और शीत में काम करता है, तथा इन्ही के लिए एक उच्च अधिकारी गद्देदार कुर्सियों पर बैठ कर अपनी ड्यूटी बजाता है। सभी इन्ही की प्राप्ति मे व्यस्त हैं, आकुल हैं—परेशान हैं। इसका क्या कारण है? क्या भोजन के बिना प्राणी ससार में नही रह सकता? तथा उसके अभाव में वह अपने शरीर का अस्तित्व नही रख सकता? नहीं, भोजन ही से शरीर की शक्ति का निर्माण होता है। वीर्य ही उसका राजा, मालिक, बादशाह और अस्तित्व-रक्षक है। जब तक वीर्य है, तब तक शरीर है; उसमें साहस और तेज है और यदि वीर्य नहीं तो कुछ नहीं। शरीर निःसार और अनन्त सम्पत्ति से भरा हुआ ससार केवल धूल के समान! इसी लिए प्राचीन शास्त्रकारो ने लिखा है कि मनुष्य को प्रति दिन ऐसा भोजन करना चाहिए जिससे उसके शरीर मे शुद्ध और गुणकारी वीर्य का निर्माण हो।

हम प्रति दिन भोजन करते हैं। हमारा किया हुआ भोजन आमाशय में पहुँचता है। आमाशय का काम भोजन सामग्रियो को पचाना तथा उन्हें परिपक्व बनाना है। भोजन का जितना अंश परिपक्व हो जाता है, वह सब उदरस्थ एक छोटी-सी अँतड़ी में चला जाता है। इसी अतड़ी को पक्वाशय कहते हैं। भोजन में जो विदूषित पदार्थ होते हैं अथवा जो उससे तैयार होते हैं, पक्वाशय उन्हें मल तथा मूत्रके रूप में मलाशय और मूत्राशय मे भेज देता है। इन विदूषित पदार्थों के अलग हो जाने पर पक्वाशय में केवल पवित्र रस रह जाता है। यही रस रुधिर का रूप धारण करता है। इसको जठराग्नि पकाती तथा दूसरा रूप देती है। पक्वाशय का रस भी विकारहीन नहीं कहा जा सकता। उसमें भी विकार तथा मल का कुछ-न-कुछ अश रह जाता है। मल के इस अंश को जलाकर जठराग्नि इसको बिलकुल साफ एवं शुद्ध बना देती है। यही रस पवित्र रक्त के रूप में परिणत होता है। रुधिर

पकने के पूर्व, उस प्रथम रस के भी दो भाग हो जाते हैं। एक भाग सूक्ष्म और दूसरा स्थूल कहलाता है। सूक्ष्म-भाग तो रुधिर का रूप धारण करता है; पर स्थूल-भाग जठराग्नि द्वारा फिर पकाया जाता है। इसमें से फिर पित्त के रूप मे मल बाहर निकलता है। पित्त के अलग हो जाने पर उस घने और शुद्ध किये हुए रस के फिर दो भाग बनते हैं। एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल। सूक्ष्म भाग से मांस की बोटियाँ तैयार होती है और स्थूल भाग फिर जठराग्नि में पकता है। इस बार भी उसके शरीर के रोम-छिद्रो मे बननेवाले मैल के रूप मे मल बाहर निकलता है और शेष भाग चरबी का रूप धारण करता है। चरबी फिर जठराग्नि में पकती है और उससे पसीना इत्यादि के रूप में मल बाहर निकलता है। विकार दूर होने पर वह पुनः दो भागो मे विभक्त होता है। एक भाग से हड्डियाँ बनती हैं और दूसरा भाग जठराग्नि में पककर मज्जा का रूप धारण करता है। मज्जा पुनः जठराग्नि में पकती है। उससे भी विकार बाहर निकलता है और अब जो बच रहता है, वही वीर्य कहलाता है।

रसाप्रक्त ततोमासम् मासान्माद: प्रजायते।
मेदास्यास्थि ततोमज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः ॥—सुश्रुत

अर्थात् मनुष्य जो कुछ खाता है उससे एक प्रकार का रस तैयार होता है। रस से मांस, मांस से मेदा, मेदा से मज्जा और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है।

हमारा शरीर यंत्र का भंडार-सा है। उसमे अनेकों कल पुर्जे प्रति दिन काम करते हैं। उनमें से प्रत्येक के अलग-अलग स्थान और काम भी हैं। प्रत्येक यंत्र नियमित रूप से प्रति दिन अपना काम करता रहता है। हमारे भोजन सामग्रियो को पचाना, उनका रस निर्माण करना, उन्हें मांस और हड्डियो के रूप में बाँटना तथा उन्हें मज्जा और वीर्य का रूप देना ही उनका काम है। यह काम, हमारे कार्यों की तरह प्रतिदिन होता रहता है। प्रति दिन हमारे शरीर में

रुधिर और वीर्य का कुछ-न-कुछ अंश तैयार होता रहता है। अगर ऐसा न होता तो हमारा शरीर न टिका रहता। पर, ऐसा नहीं होता कि हम आज जो भोजन करते हैं, उसका आज ही रुधिर और वीर्य बन जाता है। शरीर-शास्त्र के ज्ञाताओं ने बडी खोज के बाद इस सम्बन्ध में पता लगाकर यह निश्चय किया है कि हम जो भोजन करते हैं उसका तीस दिनों के बाद वीर्य बनता है।

वीर्य-उत्पत्ति के सम्बन्ध मे ससार के विद्वानो के विभिन्न मत हैं। इन मतो में तीन ही राष्ट्रो के विचार प्रधान और मुख्य माने जाते हैं—

पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति

भारतीय, यूनानी और पश्चिमीय। भारतीय विद्वानों के विचारो का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अब यहाँ हम यह दिखाएँगे कि इस सम्बन्ध में पश्चिमीय विद्वान क्या कहते हैं। यूनानी विचारो में अत्यन्त जटिलता और क्लिष्टता है। उनसे किसी प्रकार का उपकार भी नही हो सकता। अतः उनको यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। पश्चिमीय विद्वानों की धारणा यह है कि मनुष्य के शरीर के निम्न भाग मे दो अण्डकोष होते हैं। इन अण्डकोषो से दो प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। एक बाहरी और दूसरा भीतरी। यही मल वीर्य कहलाते हैं। इन दो तरह के वीर्यों का भिन्न-भिन्न काम है। भीतरी वीर्य शरीर के प्रत्येक अंग मे सचरण करता है। और उससे शरीर में कान्ति, तेज, साहस और शक्ति उत्पन्न होती है। इसी से हमारी आँखो में ज्योति आती है एवं शरीर सुडोल होता है। यह भीतरी वीर्य, भीतर-ही-भीतर निरन्तर अपना काम करता है। यदि यह नष्ट हो जाता है तो फिर शरीर का विकास रुक जाता है। अपने इस विचार को पुष्ट करते हुए पश्चिमीय शास्त्रकारों ने लिखा है कि बालक-बालिकाएँ जब अपनी शैशवावस्था को पार कर युवा अवस्था मे प्रवेश करते हैं तब अपने ही आप उनके शरीर की कान्ति बढने लगती है, उनका उत्साह दूना हो जाता है, अंग-अंग में जीवन संचरण करने लगता है। यह केवल भीतरी वीर्य

का महत्त्व है। इस सम्बन्ध में सब से उत्कट उदाहरण जो उन्होंने दिया है, वह उन जानवरो का है जो बधिया कर दिये जाते हैं। उनका कथन है कि उनके अण्डकोषों को क्रियाहीन बना देने ही से उनके शरीर का विकास रुक जाता है। ऐसे जानवरो में घोड़े, बैल, बकरे और कुत्ते इत्यादि हैं। ऐसे जानवर किसी काम के नही रह जाते। उनके शारीरिक विकास की गति बन्द हो जाती है। यह सब केवल भीतरी वीर्य के अभाव मे होता है। अण्डकोष का दूसरा मल, वाह्य वीर्य के नाम से विख्यात है। इसमे वीर्य के छोटे-छोटे कीटाणु मिले हुए रहते हैं। और उनमे जीव उत्पन्न करने की शक्ति होती है। यह भी शरीर में शक्ति और जीवन का सञ्चार करता है। चाहे जो हो, पर प्रत्येक देश के विचार-शील विद्वान यह निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि वीर्य शरीर का निष्कर्ष है। उससे जीव-तत्त्वो का विकास होता है।

वीर्य अनेक वस्तुओ का समिश्रण है। उसमे अपने उचित परिमाण के साथ कई वस्तुएँ मिली रहती हैं। रसायन-शास्त्र के पण्डितो का

वीर्य के तत्व

कथन है कि वीर्य में तीन प्रतिशत आक्साइड आफ प्रोटिन, चार प्रतिशत स्नेह, पाँच प्रतिशत फास्फेट आफ लाइम, क्लोराइड आफ सोडियम, कुछ फार-फेड और कुछ फास्फोरस है। उसमे अस्सी और सत्तर भाग तक जल भी मिला रहता है। इनके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी वीर्य में पाये जाते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि वीर्य में छोटे-छोटे कीटाणु होते हैं और इन कीटाणुओं में ही जीवन-शक्ति होती है। ये कीटाणु बहुत छोटे होते हैं। आँखो से ये कभी दिखाई नहीं देते। आधुनिक शरीर-शास्त्र-वेत्ताओं ने सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रो से इन कीटाणुओ का पता लगाकर इनके ये नाम रक्खे हैं—

१—सारमेटोजा

२—सेमिनल एनेमलक्यूल्स

३—सेमिनल फिलेमेन्ट

४—जूस्पर्मस

५—स्परमेटो जोएडस् ।

पाश्चात्य डाक्टरों ने इन वीर्य-जन्तुओ के सम्बन्ध में बड़ी ज्ञातव्य बातें मालूम की हैं। एक यूरोपीय डाक्टर ने इन वीर्य-जन्तुओ का वर्णन करते हुए लिखा है कि पुरुष के वीर्य मे बसनेवाले कोड़े १/७०० इंच के बराबर होते हैं। कालिकर नामक एक डाक्टर ने इनका आकार १/६०८ इच का भी बताया है। उक्त डाक्टर महोदय का कहना है कि वीर्य में रहनेवाले जन्तु दुमदार होते हैं। उनकी दुम का अगला हिस्सा गोल होता है। वे सजीव प्राणी ही की भाँति होते हैं। वे चलते-फिरते तथा दौड़ते भी हैं। जिस प्रकार छोटी और नन्हीं नन्हीं मछलियाँ पानी में तैरा करती हैं उसी प्रकार वीर्य के जन्तु भी वीर्य में सतरण किया करते हैं। जिस तरह वीर्य-कोष में ऊष्णता रहती है; यदि उसी उष्णता के परिमाण की शीशी में ये वीर्य-जन्तु बन्द कर दिये जायँ तो वे चौबीस घंटे से लेकर बहत्तर घंटे तक जीवित रह सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि आदमी मर गया है और उसके वीर्य में बसनेवाले जन्तु उसकी मृत्यु के चौबीस घंटे बाद तक जीवित रहे हैं।

वीर्य-जन्तुओं की आकृति के सम्बन्ध में इन्हीं डाक्टरों ने लिखा है कि उनका सिर चपटा और कुछ लम्बा तथा गोल होता है। सिर के पास ही उनकी पूँछ होती है। पूँछ लम्बी तथा पतली-सी होती है। सिर की लम्बाई-चौड़ाई प्रायः १/१०००० इञ्च के बराबर होती है। पूँछ किसी की १/८०० इंच और किसी की १/४००० इंच के बराबर होती है। पूँछ के सहारे ही वे चलते-फिरते तथा दौड़ते हैं। उनकी यही शक्ति उन्हे गर्भाशय मे ले जाती है और उससे जीव की उत्पत्ति होती है। जिन पुरुषो के वीर्य मे ये जन्तु नहीं होते, उनमें सन्तानोत्पादन की शक्ति नहीं रहती।

वीर्य कैसा रहता है ?

वीर्य सम्पूर्ण शरीर का प्राण है। उससे ही शरीर का विकास होता है। जिस प्रकार प्रति मिनट सारे शरीर मे रुधिर का संचरण होता है, उसी प्रकार वीर्य भी हमारे शरीर मे सब जगह फैला हुआ है। वैद्यक में कहा गया है कि—

वीर्य का स्थान

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौरसो यथा।
एवं हि सकलेकायेशुक्र तिष्ठति देहिनाम् ॥

जैसे दूध में घी और ईख में रस गुप्त रूप से रहता है उसी प्रकार प्राणियों के शरीर भर मे वीर्य रहता है। वास्तव मे बात ऐसी ही है। किन्तु अनेक अज्ञानी मनुष्यो की यह मिथ्या धारणा है कि वीर्य केवल एक ही स्थान मे है और उस स्थान में वीर्य का एक कुंड-सा भरा रहता है। इसीलिए वे अपने शरीर के इस निष्कर्ष को पानी की भाँति बहाया करते हैं। उनका कहना है कि वीर्य इसीलिए है ही। यदि वह निरन्तर शरीर से न निकाला जाय तो उससे शरीर को क्षति होगी और वीर्य स्वय अपने आप स्वप्न-दोष मे बाहर निकल जायगा। इस विचारवाले मदान्ध पुरुषों के जीवन का कभी विकास नहीं होता। वे अधिक बलवान और शक्तिवान भी नहीं होते। भला उन अज्ञानियो को कौन समझाये कि कहीं शक्ति का पुंज भी शरीर को शक्ति-हीन बनाता है ? शरीर में तो जितना ही वीर्य रहेगा, वह उतना ही शक्तिशाली और सुदृढ़ रहेगा। जिस प्रकार शरीर की शक्ति के लिए प्रत्येक अंगो में रुधिर का होना आवश्यक है उसी प्रकार वीर्य का होना भी आवश्यक है। यदि वीर्य एक ही स्थान पर होता अथवा उसका होना एक ही स्थान के लिए आवश्यक होता तो फिर उसके अभाव में अथवा उसकी विकृत अवस्था मे केवल उसी स्थान को क्षति पहुँचनी चाहिए, जहाँ उसका रहना अत्यन्त आवश्यक है। पर, ऐसा नहीं होता। वीर्य के अभाव मे सारे शरीर को धक्का पहुँचता है। शरीर का प्रत्येक अग विकास की सम्पत्ति से वंचित हो जाता है। इससे

यह विदित होता है कि वीर्य शरीर के एक स्थान में न रहकर सम्पूर्ण शरीर मे फैला रहता है।

मनुष्य प्रतिदिन भोजन करता है। यदि प्रतिदिन के किये भोजन का तुरन्त रस तैयार हो जाय और वह फिर क्रम-क्रम से उसी दिन वीर्य के रूप मे परिणत हो जाय तब तो शरीर के अन्दर वीर्य का सागर-सा लहराने लगे। पर ऐसा नही होता। महामान्य भोज ने लिखा है—

वीर्य कब पकता है?

धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येके क्रमतो रसः।
अहो रात्रात्स्वय पंच, सार्ध दण्ड चतिष्ठति॥

रस से लेकर मज्जापर्यन्त प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती है। इसके पश्चात् वीर्य बनता है। अर्थात् तीस दिन-रात और ९ घड़ी मे रस से वीर्य का निर्माण होता है। प्राचीन आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत ने भी लिखा है कि—

एव मासेन रसः शुक्रो भवति पुसा स्त्रीणाचार्तव मिति।

अर्थात् यह रस एक महीने में पुरुष के शरीर में वीर्य और स्त्री के शरीर मे रज के रूप में बनकर तैयार होता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वीर्य इस समय के आगे-पीछे भी पक जाता है। इस सम्बन्ध में केवल शक्ति का आधार लिया जा सकता है। जिस मनुष्य के शरीर मे जितना बल होगा, जिसकी पाचन-शक्ति जितनी तीव्र होगी, उसका वीर्य उतना ही अल्प काल मे पकेगा। अशक्त और निर्बल मनुष्यो का वीय एक महीने से भी अधिक समय मे पकता है। परन्तु वीर्य के पकने का वास्तविक काल एक महीना ही है और यही वीर्य सर्वोत्तम तथा गुणकारी होता है। इस वीर्य के कुछ सद्‌गुण एक वैद्यक ग्रन्थ के अनुसार इस तरह हैं :—

१. एक मास या इससे कुछ अधिक काल मे जो वीर्य या रज उत्पन्न होता है, उसमें जीवन-शक्ति प्रचुर परिमाण में भरी रहती है।

२. ऐसे वीर्य या रज को गर्भधारण के अतिरिक्त और किसी दुर्गुण मे विनष्ट न करना चाहिए।

३. ऐसा वीर्य और रज यदि शरीर में सदा बना रहे तो सर्वोत्तम है। उसे बाहर तभी निकालना चाहिए जब अत्यन्त आवश्यकता हो।

४. ऐसे वीर्य से शरीर का विकास होता है। उससे तेज, कान्ति, साहस और शक्ति आती है।

५. चेतना ठीक रहती है। हृदय मे ओज का परिमाण बढ़ता है।

मानव-शरीर के अन्दर एक पदार्थ का निवास रहता है। यह पदार्थ प्रत्येक स्त्री पुरुष के हृदय मे रहता है। यह वह पदार्थ है जिससे जीवन 'जीवन' पद को सार्थक करता है; जिससे मनुष्य की आकृति, मनुष्य का शरीर, मनुष्य की आँखें और मनुष्य का प्राण भी एक अद्भुत ज्योति से जगमगाया करता है; उसी को शरीर-शास्त्र के वेत्ताओ ने ओज के नाम से सम्बोधित किया है। इसी ओज के सम्बन्ध मे एक जर्मन डाक्टर ने लिखा है कि मानव-शरीर में वीर्य से बढ़कर एक सर्वोत्तम और गुणद पदार्थ पाया जाता है। इस पदार्थ का निर्माण मनुष्य के उस वीर्य से होता है जो उसके शरीर का सार तत्त्व कहा जाता है। जिस मनुष्य के शरीर का वीर्य शुद्ध और पवित्र होगा तथा जिसमे वीर्य का जितना ही प्रचुर परिमाण पाया जायगा, उसमें ओज नाम का तात्विक पदार्थ भी उतना ही अधिक रहेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य को ओज की रक्षा के लिए वीर्य की रक्षा करनी चाहिए।

ओज क्या वस्तु है?

वास्तव में ओज से मानव-शरीर के शक्ति की वृद्धि होती है; उसकी चेतना और उसके मस्तिष्क में बल उत्पन्न होता है और आयु वृद्धि में भी सहायता मिलती है। हमारे प्राचीन ऋषियो ने इस ओज के सम्बन्ध मे कहा है :—

ओजस्तु तेजो धातूना शुक्रान्तानां परं स्मृत
यन्नाशे नियत नाशो, यस्मिन्तिष्ठति जीवनम् ॥

"अर्थात् ओज, रस से लेकर वीर्य तक धातुओं का सार रूप तेज है जिसके नष्ट होने पर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसके रहने पर ही जीवन धारण किया जा सकता है।"

ओज, वीर्य, का निष्कर्ष रूप है। जिस प्रकार वीर्य सम्पूर्ण शरीर में फैला रहता है, उसी प्रकार ओज भी हृदय से सारे शरीर में व्याप्त रहता है। योग चिन्तामणि मे लिखा है:—

ओजः सर्व शरीरस्थ स्निग्ध शीत स्थिर सितम्।
सोमात्मक शरीरस्य बलपुष्टिकर मतम् ॥

ओज सम्पूर्ण शरीर में वास करता है। यह चिकना, शीतल, स्थिर और उज्ज्वल होता है। यह शरीर मे तेज बढ़ानेवाला तथा बल को पुष्ट करनेवाला है।

'ओज' शब्द का अर्थ ही यह प्रगट करता है कि वह जीवन-तत्त्वो का सार रूप है। अतः यथासाध्य इस ओज की, प्रत्येक मनुष्य को रक्षा करनी चाहिए। जो ससार मे महापुरुष बनने की अभिलाषा रखते हैं; जो अपने जीवन कार्यों मे सफलता प्राप्त कर संसार की परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि सबसे पहले अपनी काम-लोलुप इन्द्रियो पर निग्रह रखकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करें। ब्रह्मचर्य से वीर्य की रक्षा होगी और वीर्य-रक्षा से ओज मे वृद्धि होगी। फिर न तो उन्हें रोगो का सामना करना पड़ेगा और न ससार की परिस्थितियाँ ही उन्हे भयभीत कर सकेंगी। वे एक प्रबल शक्तिशाली की भाँति संसार मे अपनी महत्ता को सुरक्षित किये रहेगे।

मनुष्य अपना विनाश अपने हाथो करता है। अपने हाथो से वह अपने लिए वह गड्ढा तैयार करता है, जिसमे गिरकर वह स्वय चकनाचूर हो जाता और उसके बाल-बच्चो का प्रायः विनाश ही हो जाता

है। प्रकृति की ओर से मनुष्य चैतन्य है। उसमें विचार करने की शक्तियाँ हैं। फिर यदि वह यह नहीं समझता कि उसके जीवन की रक्षा कैसे और किस प्रकार हो सकेगी तो दूसरे का क्या दोष? यदि वह तनिक विचार से काम ले; किंचित् मानव-जीवन की महत्ता पर विचार करे तो उसे यह प्रत्यक्ष विदित हो जायगा कि शरीर-जीवन का दुर्ग इसी वीर्य पर टिका हुआ है। और इसी की महत्ता अंग-प्रत्यंग मे दौड़ रही है। अतः क्यो न वीर्य की रक्षा करें? क्यो न अपने शरीर के ओज को बढ़ावें? क्यो न ब्रह्मचारी बनकर अपने को शक्तिशाली बनावें। पर नहीं, वे ऐसा न सोच काम की भयंकर ज्वाला में अपने को विनष्ट कर डालते हैं। वीर्य और ओज को खाक मे मिला देते हैं। फिर इसका परिणाम मृत्यु और जरा को छोड़कर और क्या हो सकता है? कारण, ससार मे ब्रह्मचर्य ही जीवन और वीर्य-नाश ही मृत्यु है।

वीर्य-रक्षा का प्रश्न

जब मानव-शरीर मे वीर्य ही प्रधान वस्तु है; जब उसी का अखंड प्रताप उसमे समाया हुआ है, तब जो मनुष्य अपने वीर्य की रक्षा न करे, उससे बढ़कर इस ससार मे और कोई मतिमन्द नहीं हो सकता। संसार में सब वस्तुओ का मूल्य हो सकता है, पर, वीर्य का नहीं। कोई दूसरी वस्तु खो जाने पर प्राप्त भी की जा सकती है, पर वीर्य का एक बूंद गिरा कर फिर उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। उस एक विन्दु में रुधिर के सहस्रो बूंद समाये रहते हैं; कई महीनों के भोजन का निष्कर्ष समाया रहता है। यदि वीर्य का एक बूँद नष्ट हो गया तो समझिए शरीर का एक वह जौहर निकल गया, जिसके अभाव मे शरीर का विनाश हो जाता है। अतः प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में अमेरिका के एक विशेषज्ञ ने लिखा है:—

"वीर्य शरीर का सार है। इसी के ऊपर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर करता है। मनुष्य-जीवन के गुणो का विकास भी इसी वीर्य से ही होता है। जिस मनुष्य के शरीर में वीर्य नहीं रहता उसमें न साहस

रहता है, न शक्ति रहती है और न तेज ही होता है। वह मनुष्य संसार के किसी काम का नहीं होता।" इसी प्रकार डाक्टर गयोलूईस ने भी लिखा है—"जिस समाज का एक भी मनुष्य वीर्य का अपव्यय करता है, वह समाज दुश्चिता और दुख की भावनाओं से भर-सा जाता है। कारण, यह संक्रामक रोग है और थोड़े ही दिनों मे उस समाज में रहने वाले सभी मनुष्यो को अपना शिकार वना लेता है। इसलिए ऐसी विनाशकारी रीति का प्रत्येक समाज से वहिष्कार होना चाहिये।"

वीर्य-रक्षा से कई लाभ होते हैं। जो वीर्य रक्षा करता है, उस मनुष्य के कल्याण के साथ ही साथ उसके समाज और राष्ट्र का भी कल्याण होता है। वह अपने लिए इस लोक में वीर्य-रक्षा से लाभ तो स्थान रखता ही है, दूसरे लोक में भी वीर्य-रक्षा द्वारा स्थान पाने का अधिकारी वन जाता है। किसी ऋषि का वचन है कि वीर्य-रक्षा ससार मे सवसे वढ़कर तपस्या है। इससे आत्मा मे ईश्वरीय ज्ञान जागृत होता है। मुक्ति की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायता मिलती है। यहाँ हम वीर्य-रक्षा से होने वाले कुछ लाभो का सूक्ष्म-रूप में वर्णन कर रहे हैं:—

१. वीर्य-रक्षा से संसार के गुरुतर और महान् कार्य भी साध्य तथा सरल वनाये जा सकते हैं।
२. ब्रह्मचर्य से तेज, शक्ति और आत्म ज्ञान प्राप्त होता है।
३. जो मनुष्य संसार तथा अपने राष्ट्र की सेवा करना चाहे, उसे ब्रह्मचारी वनना चाहिए। ब्रह्मचर्य से हृदय में सेवा-वृत्ति का जागरण होता है।
४. हृदय की शुद्धता तथा पवित्रता के लिए ब्रह्मचर्य से वढ़कर कोई दूसरी औषधि नहीं।
५. ब्रह्मचर्य से हृदय पुष्ट तथा कर्तव्यनिष्ठ वनता है।

६. ब्रह्मचर्य से जीवन-शक्ति का विकास और उसमें स्फुरण आता है।
७. ब्रह्मचर्य से मस्तिष्क, स्थिर और विचारशील बनता है।
८. ब्रह्मचर्य ही मनुष्य के शरीर में सौन्दर्य, साहस और पवित्रता का मूल कारण है।
९. ब्रह्मचर्य से ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है।
१०. ब्रह्मचर्य से वासना की भावनाओं का विनाश होता है।
११. चित सदैव प्रसन्न और आह्लादित रहता है।
१२. एक ब्रह्मचारी सौ यज्ञ करनेवाले से श्रेष्ठ और प्रशंसनीय माना जाता है।
१३. वीर्य का एक-एक अणु जीवन-शक्ति से भरा रहता है। जो इसकी रक्षा करता है वह अपनी आयु-शक्ति बढ़ाता है।
१४. वीर्य की रक्षा करनेवाला पुरुष दीर्घजीवी होता है।
१५. वीर्य की रक्षा करनेवाले मनुष्य में ही सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति होती है।
१६ वीर्य शरीर का राजा है। इसके क्षीण हो जाने पर शरीर की सारी शक्तियाँ क्षीण और निस्तेज हो जाती हैं।

छठा अध्याय

अप्राकृतिक मैथुन और उसके दोष

संसार में मैथुन क्रिया की व्यापकता को कोई रोक नहीं सकता। इससे संसार का विकास होता है। प्रकृति की शक्ति में सम्वर्धता होती है। परन्तु जिस प्रकार प्रकृति की ओर से अन्यान्य

मैथुन का अर्थ

विषयो के लिए नियम और विधान बने है, उसी प्रकार मैथुन के लिए भी विधान और नियम हैं। जब हम इन विधानो का उचित रीति से पालन कर उसकी व्यापकता का मूल अर्थ समझ कर ही मैथुन मे प्रवृत्त होते हैं, तभी हमे वह विकास और शक्ति प्राप्ति होती है, जिसके अन्दर प्रकृति का मूल उद्देश्य छिपा रहता है। अन्यथा मैथुन की प्रतिक्रिया के विपरीत जाने से शरीर रोगो का घर-सा बन जाता है। जीवन की सार्थकता नष्ट हो जाती है और असमय मे ही मृत्यु तथा वृद्धता का सामना करना पड़ता है।

मैथुन से वीर्य का विनाश होता है। शरीर की शक्तियाँ क्षीण होती हैं। वह मनुष्य संसार में बड़ा ही भाग्यशाली है जो जीवन-पर्यन्त मैथुन से विलग रहकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है। प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिए।

शास्त्रों मे मैथुन के आठ प्रकार बतलाये गये हैं। प्रत्येक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेवाले मनुष्य को इनसे बचने का उद्योग करना चाहिए। मैथुन के वे आठो भेद इस तरह हैं:—

मैथुन के भेद

स्मरणं, कीर्तनं, केलिः प्रेक्षणं, गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेवच ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

इन आठों अर्थात् स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुप्त-भाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रिया निष्पत्ति की व्याख्या इस तरह है—

१. **स्मरण**—किसी चित्र अथवा किसी अन्यत्र स्थान में सौंदर्यमयी स्त्री को देखकर, उसके पश्चात् भी उसका बार-बार स्मरण करना।

२. **कीर्तन**—स्त्रियों के कामोत्तेजक अगो का वर्णन तथा उनका यश गान करना। अश्लील गीतों मे उनके रूप तथा सौंदर्य की प्रशंसा करना।

३. **केलि**—स्त्रियों के साथ खेलना, हँसना, किलकना तथा उनसे मनोविनोद की बातें करना।

४. **प्रेक्षण**—किसी स्त्री को वासना की दृष्टि से देखना तथा लुक-छिपकर उसे देखने की धृष्टता करना।

५. **गुप्त-भाषण**—स्त्री के पास बैठना, उनके साथ उपन्यास और कहानियों के शृगारी पात्रों पर वाद-विवाद करना तथा एकान्त में उनसे हँस हँसकर बातें करना।

६. **संकल्प**—सिनेमा की किसी सुन्दरी अभिनेत्री, उपन्यासों की सुन्दरी नायिका या कुत्सित-भावों से पूर्ण चित्रो को देखकर उन्हीं की कल्पनाओ मे निरंतर निमग्न रहना।

७. **अध्यवसाय**—किसी सुन्दरी; किन्तु अप्राप्य स्त्री की प्राप्ति के लिए बार-बार परिश्रम-पूर्वक प्रयत्न करना।

८. **क्रिया-निष्पत्ति**—किसी स्त्री के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्भोग करना।

मैथुन के आठो प्रकार किसी भी ब्रह्मचारी को विनष्ट कर सकते हैं। यदि मनुष्य इनसे अलग रहकर अपने मन की प्रवृत्तियों को संयम की डोरी से कसकर बाँधे रहे तो वह संसार मे पूर्ण ब्रह्मचारी बन सकता है।

मैथुन से हानियाँ

किन्तु आज कल एक दूसरा ही विनाशक बवण्डर चल पड़ा है।

हजारो लाखों युवक-युवतियाँ इस ववण्डर के झोंके मे पड़कर समुद्र के उस अगाध गर्त्त में गिर रहे हैं, जहाँ किसी का पता भी नहीं लगता। यही कारण है कि आज राष्ट्रीय शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हैं। सामाजिक वल आहत होकर रो रहा है। जब देश में पाप का बाज़ार गर्म है, जब समाज मे स्त्री-पुरुष, नवयुवक और नवयुतियाँ मैथुन की दावाग्नि मे अपने को खुल्लमखुल्ला लुटा रहे हैं तब फिर राष्ट्र और समाज का कैसे कल्याण हो सकता है! कैसे वह उन्नति की चरम-सीमा पर पहुँचकर अपने को सबल और शक्तिवान बना सकता है! एक ओर जहाँ मैथुन का यह विनाशक ववण्डर चल रहा है, वहाँ दूसरी ओर अप्राकृतिक मैथुन की आँधियाँ भी गर्ज रही हैं। ऐसा कोई भी स्कूल नहीं, ऐसा कोई भी कालेज नहीं, ऐसा कोई भी भारतवर्षीय समाज नही, जहाँ ये आँधियाँ न गर्ज रही हो—जहाँ के सुकुमार वालक-वालिकाएँ इसकी भयङ्कर चपेटों मे न पड़े हो! न तो किसी में पुरुषत्व रह गया है और न मनुष्यत्व। जब पुरुषत्व की सृष्टि करनेवाला, मनुष्यत्व को सुदृढ़ करनेवाला वीर्य ही लोगो के शरीर में नही रह गया तो कहाँ से इन दोनो मूल शक्तियो का विकास होगा। इनके विकास का मूल तो वीर्य ही है। किन्तु वीर्य आज पानी की तरह बहाया जा रहा है। एक ओर जहाँ वयस्क स्त्री-पुरुष अति मैथुन द्वारा अपने रज और वीर्य का विनाश कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर कैशोर वालक-वालिकाएँ अप्राकृतिक मैथुन की अग्नि मे अपने को झोंक रही हैं। एक ओर अविकसित और यौवन-हीन सन्तान् पैदा हो रही है, और दूसरी ओर वह स्वयं अपना सर्वनाश कर रही है। यदि ऐसी अवस्था में भी लोग समाज और राष्ट्र के कल्याण की आशा करें तो आश्चर्य है?

समाज का बच्चा-बच्चा आज झुलस उठा है। आज प्रत्येक नवजवान की शक्ति भस्म हो गई है। सड़को पर, रास्तो पर, गलियों या कहीं भी ऐसा कोई वालक और युवक नहीं दिखाई देता जो ताजे गुलाब के फूल की भाँति मुस्कुरा रहा हो और जिसके अन्दर सिंह की-सी दहाड़ने की

शक्ति हो। सभी जल गये हैं—भस्म हो गये हैं। शरीर के त्वचाओं के अन्दर केवल, हड्डियों में चिपटी हुई मांस की थोड़ी सी बोटियाँ शेष रह गई हैं। चेहरे पर मुर्दनी नाच रही है। आँखें लाल-पीली बन गई हैं। शरीर में साहस और शक्ति का नाम नहीं। किन्तु फिर भी विलासिता के सैकड़ों सामान शरीर पर लदे हैं। सिर पर बाल, हाथ में घड़ी, पैरो में कामदार जूते और कोट, कमीज़, वास्कट, पैंट इत्यादि। एक ओर शक्तियो का अपव्यय हो रहा है, जीवन का सर्वनाश किया जा रहा है और दूसरी ओर विदेशी सभ्यता तथा आदर्श का अनुसरण; किन्तु इससे क्या हमारे समाज का कल्याण हो सकेगा? क्या इससे हमारा राष्ट्र उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचकर अपने प्राचीन नाम का डङ्का बजा सकेगा? नहीं, कभी नहीं। ऐसे झुलसे और मृतक युवको से इसकी आशा भी करनी व्यर्थ है। यह तो तभी हो सकता है जब समाज में भरत-जैसे बालक और अभिमन्यु-जैसे नवयुवक पैदा हो और इसका होना तभी सम्भव हो सकता है जब बालको पर नियन्त्रण रखकर उन्हे ब्रह्मचारी बनाया जाय।

हस्त-मैथुन के दोष

संसार में स्त्री-पुरुष का प्रसग अनिवार्य है। ऊपर मैथुन के जो आठ प्रकार बतलाये गये हैं, उनसे समाज को उतनी क्षति नहीं पहुँच रही है, जितनी इस अप्राकृतिक प्रयोग से पहुँच रही है। समाज का प्रत्येक कैशोर बालक आज इस रोग का शिकार है। आज प्रत्येक नवयुवक की हृदय-शक्ति को पाप के इस ज्वाला ने जला दिया है। पाप और व्यभिचार की यह ज्वाला ससार मे अन्य पापों से कहीं अधिक भयंकर है। इससे बालक के विकास की शक्तियाँ कम हो जाती हैं। उसके जीवन मे घुन की भाँति एक महारोग लग जाता है। स्मरण-शक्ति जाती रहती है। साहस और धैर्य का दुर्ग ढह जाता है। शरीर की नसें ढीली पड़ जाती हैं। जनेन्द्रिय टेढ़ी, छोटी और शिथिल हो जाती हैं। वह मुख की ओर मोटी और जड़ की ओर पतली-सी पड़

जाती हैं। उसके ऊपर एक मोटी नस उमड़ आती है। ये नपुंसकता के चिह्न हैं। ऐसा बालक पूर्ण वयस्क होने पर स्त्री-सहवास के योग्य नहीं रह जाता। किसी गन्दे चित्र तथा कुत्सित भाव-पूर्ण नाच-गाने को देख-सुनकर के ही उसके शरीर का वीर्य स्खलित हो जाता है। वह सन्तान उत्पन्न करने मे सर्वथा अयोग्य और निरस्त्र-सा होता है।

हस्त-मैथुन से शरीर की नसें काँप जाती हैं। जिस तरह वायु के प्रवल झोको से एक नन्हीं कलिका टेढ़ी होकर झुलस जाती है उसी प्रकार हस्त-मैथुन के धक्के से सारा शरीर झुककर विनष्टप्राय-सा हो जाता है। शरीर के भीतर 'मनोवहा' नामक एक प्रमुख नाड़ी है। इस नाड़ी द्वारा शरीर के सब रगो मे रुधिर का सञ्चार होता है। यही नाड़ी मनुष्य को स्वस्थ और सबल भी बनाती है, किन्तु हस्त मैथुन से इस नाड़ी का विशेष रूप से विनाश होता है। वह हस्त-मैथुन के अत्यन्त जोरदार झोके को न सहकर सिकुड़ जाती है। उसके सञ्चालन की क्रिया-शक्ति रुक जाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य धातु की दुर्बलता, प्रमेह तथा स्वप्न-मेह आदि भयङ्कर रोगों का शिकार बन जाता है।

हस्त-मैथुन से मानव-शरीर का जितना अधिक अश में विनाश होता उतना विनाश स्त्री संसर्ग से नही होता। संसर्ग के समय वीर्य धीरे-धीरे बाहर निकलता है; पर हस्तमैथुन का भयङ्कर झोका वीर्य के अधिक अश को एक साथ ही बाहर निकाल फेंकता है। इस क्रिया से हृदय और मस्तिष्क को एक भयङ्कर धक्का भी लगता है। जिससे शरीर की सारी नसें काँप जाती हैं और वीर्य का अवशेष अश भी पानी की भाँति बाहर निकल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य की आयु-शक्तियाँ धीरे-धीरे क्षीण होने लगती हैं। वीर्य में एक प्रकार के कीड़े होते हैं जिनमें सांसारिक रोगो से युद्ध करने की महाशक्ति होती है। वीर्य जितना ही सुदृढ़ और शक्तिशाली रहेगा, उतना ही उसके कीड़े भी बलवान होंगे। हस्त मैथुन की अनैसर्गिक

क्रिया से इन कीड़ों का अधिक सख्या में विनाश होता है और मनुष्य हैजा, मलेरिया, प्लेग इत्यादि भयङ्कर रोगों का शिकार बनकर असमय में ही संसार से विदा हो जाता है।

संसार के अधिकांश रोग इस हस्त-मैथुन-क्रिया से उत्पन्न होते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि जो मनुष्य इस महारोग में आग्रस्त होता है उसका मस्तिष्क विकृत-सा रहता है। किसी भी बात को स्थिर होकर वह सोच ही नहीं सकता। जिस तरह नदियो में क्षण-क्षण पर छोटी-छोटी लहरियाँ उठती रहती हैं, उसी प्रकार उसके विचार भी सदैव पलटते रहते हैं। वह स्वभाव का क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है। हृदय मे अनेको प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। खाँसी, श्वाँस, यक्ष्मा आदि विषैले रोगो का वह घर-सा बन जाता है। उसकी प्रतिभा समूल नष्ट हो जाती है।

अमेरिका के एक विद्वान डाक्टर ने अपनी एक पुस्तक में हस्तमैथुन की चर्चा करते हुए लिखा है—"मनुष्यो के लिए यह रोग बड़ा भयानक है। इससे जीवन-शक्तियो का विनाश हो जाता है। मस्तिष्क विकृत हो जाता है। मनुष्य अनेक प्रकार के रोगो का शिकार बन जाता है। आजकल पागलखानो मे ९५ प्रतिशत मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं, जिनकी चेतन-शक्तियाँ केवल इसी महारोग के कारण बिगड़ी हुई रहती हैं।" हिल साहब ने भी हस्त मैथुन के विनाशकारी परिणामो का वर्णन करते हुए लिखा है—"हस्तमैथुन वह तीव्र धारवाली कुल्हाड़ी है, जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथो अपने पैरो मे मारते हैं। उनको इसका ज्ञान तब होता है जब उनकी मानव शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, जब उनका हृदय, मस्तिष्क और मूत्राशय शक्ति से विहीन हो जाता है और उन्हे स्वप्न-दोष, शीघ्र पतन, प्रमेह इत्यादि भयकर रोग चारों ओर से घेर लेते हैं और जनेन्द्रिय टेढ़ी और छोटी हो जाती है।"

१. ऐसे बालकों में शक्ति और दृढ़ता नहीं होती। वे किसी सबल तथा दृढ़ात्मा मनुष्य की ओर अधिक देर तक देखने का साहस नहीं

रखते। वे प्रायः झूठी लज्जा के भावों से भरे हुए तथा इधर-उधर लुकने-छिपनेवाले होते हैं।

हस्तमैथुन के लक्षण

२. ऐसे लड़के धृष्ट स्वभाव के होते हैं। वे इसे छिपाने के लिए अपने को पूर्ण सदाचारी और धर्मिष्ठ कहते फिरते हैं।

३. उनका चेहरा निस्तेज और कान्ति-हीन हो जाता है। चित्त उदास और दुखी रहता है। प्रसन्नता के सारे भाव नष्ट हो जाते हैं। स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा बन जाता है।

४. कपोलो की गुलाबी जाती रहती है। उन पर झुर्रियाँ तथा एक प्रकार का काला दाग़-सा पड़ जाता है।

५. आँखें नीचे धँस जाती हैं। गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं और शरीर की हड्डियाँ बाहर से साफ-साफ दिखाई देने लगती हैं।

६. मूछों का रंग बदल जाता है। उनमें भूरा तथा लाल-पीला रग आ जाता है। बाल पककर गिरने लगते हैं।

७. बाल्यावस्था में ही बुड्ढे-से दीखने लगते हैं, कमजोर और साहस-शून्य हो जाते हैं, किसी काम में मन नहीं लगता, थोड़े ही परिश्रम से घबडा जाते हैं, दम फूलने लगता है और सरल-से-सरल काम भी कठिन तथा असाध्य ज्ञात होता है।

८. अनेक प्रकार की चिन्ताएँ चित्त को घेर लेती हैं, हृदय भय से भर-सा जाता है। जरा-सी भय की बात पर चित्त धड़कने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाता है।

९. अग्नि कम हो जाती है, बार-बार भूख लगती है, पर कुछ खाया नहीं जाता। कब्ज और मलबद्धता की बार-बार शिकायत उत्पन्न होती है। वह मसालेदार चटपटी चीजों के खाने की ओर अधिक झुकता है।

१०. नींद नहीं आती और यदि आती है तो किसी बात का कुछ

भी ज्ञान नहीं रहता। आँखें खुलने पर चित्तआलसी और उत्साह-हीन-सा हो जाता है।

११. रात में कई बार स्वप्न-दोष होता है।

१२. वीर्य पानी की भाँति पतला हो जाता है। उसमें रहने वाली महाशक्ति नष्ट हो जाती है। पेशाब के साथ ही बूँद-बूँद कर वीर्य टपकता है।

१३. बार-बार पेशाब मालूम होता है, पर स्पष्ट रूप से होता नहीं। कभी-कभी पेशाब के साथ धातुएँ भी जाती हैं।

१४. शरीर के अंग-प्रत्यगो में प्रायः दर्द हुआ करता है। हाथ-पैरों में सनसनी और एक प्रकार की झुनझुनाहट-सी हुआ करती है।

१५. पैर के तलुओ तथा हाथ की हथेलियो से पसीना-सा छूटा करता है।

१६. हाथ और पैरों मे कँपकँपी आया करती है। किसी वस्तु को हाथ मे लेने पर वह हिलने लगती है और देर तक हिलती रहती है।

१७. शृंगारमयी वस्तुओ की ओर चित्त अधिक आकर्षित होता है। अश्लील तथा गन्दे भावों से पूर्ण पुस्तकों के पढ़ने मे जी लगता है।

१८ स्त्रियों के समाज मे जाने के लिए चित्त तरसा करता है तथा उन्हें देखने के लिए आँखो से लुक-छिपकर व्यभिचार करना पड़ता है।

१९. आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाता है और अपने-ही-आप मूर्च्छा-सी आने लगती है।

२०. स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। मस्तिष्क निर्जीव और विचार-शक्ति से हीन-सा हो जाता है। रात का देखा हुआ स्वप्न प्रभात होते-होते भूल जाता है। मानसिक शक्तियो का प्रायः विनाश-सा हो जाता है।

२१. दिमाग़ गर्म हो जाता है। आँखो की ज्योति कम हो जाती है और शरीर में जलन-सी मालूम होने लगती है।

२२. दाँतो के मसूड़े फूल आते हैं। मुख से दुर्गन्धि निकलने लगती है।

२३. कमर झुक जाती है। चलते समय ऐसा ज्ञात होता है मानो कोई पचास वर्ष का बूढ़ा मनुष्य जा रहा है।

२४. गला रूखा हो जाता है। वाणी की कोमलता जाती रहती है।

२५. वृष्ण बढ़कर नीचे की ओर अधिक लटक जाते हैं।

२६. किसी काम में सफलता नहीं मिलती। चारों ओर से लांछना और अपमान का ही पुरष्कार मिलता है।

जिस पुरुष या कैशोर बालक बालिका में ये लक्षण प्रतीत हों उसे देख यह समझ लेना चाहिए कि यह हस्त-मैथुन द्वारा अपनी शक्तियो का विनाश कर रहा है। यद्यपि वह उसके छिपाने की चेष्टा करता है और लोगो के सामने सदाचारी बनने का ढोग रचता है, पर उसकी आँखें, उसकी आकृति यह चिल्लाकर कह देती हैं कि यह जो कुछ कह रहा है, सब असत्य कह रहा है। आज समाज की गोद ऐसे पुरुषो और बालको से भरी हुई है। ऐसे बालक अज्ञान और काम की अन्धी भावना में चूर होकर एकान्त में बैठ बड़ी खुशी से अपने जीवन का सर्वनाश कर देते हैं। उन्हें थोड़ा आनन्द भी मिलता है; किन्तु यह क्षणिक आनन्द उनके लिए विष का काम करता है। उनकी जीवन-कली अल्प काल में ही बुझ जाती है और वे अपने माता-पिता को रोते विलपते छोड़कर इस संसार से प्रस्थान कर जाते हैं। समाज में फैली हुई इस भयानक कुरीति का शीघ्र-से-शीघ्र विनाश होना चाहिए। इस महारोग के जाल में ही फँसकर देश के सैकड़ों लाल प्रति सप्ताह अपने जीवन की इहलीला समाप्त कर देते हैं। कोई तपेदिक़ का शिकार होकर जाता है, तो कोई राज-यक्ष्मा का। सभी किसी न किसी भयानक रोग मे आग्रस्त हो एक के बाद एक संसार से

उठते जा रहे हैं। फिर समाज कैसे अपना उत्थान कर सकेगा! यही सोचने की बात है।

यह हस्तमैथुन से भी निन्दनीय कर्म है। इससे बालकों के जीवन का विकास रुक जाता है। इस देश और समाज के अभाग्य से करोड़ों बालक आज नर-पिशाचो द्वारा काम की इस भीषण ज्वाला मे झोके जा रहे हैं। बड़े-बड़े कालेजो, स्कूलों और धर्म-संस्थाओ के अन्दर भी यह भयकर पाप छिपा हुआ है। जहाँ देखिए, वहीं पर्दे के अन्दर इसकी भीषण ज्वाला काम कर रही है। जब हम बड़े-बड़े शिक्षितो और सम्माननीय व्यक्तियो को बालकों के जीवन का सर्वनाश करते हुए पाते हैं तब हमे उनकी मनुष्यता पर घृणा होने लगती है और विवश होकर उन्हे राक्षस के नाम से पुकारना पड़ता है। शिक्षितों और अशिक्षितो की यह राक्षसी-लीला देश को महापतन के गह्वर में झोक रही है। जब देश के बच्चे ही महापतन की ओर ढकेले जा रहे हैं, तब फिर देश क्यों न पतन के गर्त्त मे गिरेगा?

गुदा-मैथुन

काम-वासना की चक्की चल रही है। मानव-जीवन उसी में पड़ कर अपने अस्तित्व से वंचित होता जा रहा है। जिनकी काम-वासना की पूर्ति के लिए स्त्रियों का जीवन नरक से भी अधिक जघन्य बना हुआ है; उनसे समाज का अंग क्षत-विक्षत हो ही रहा है; किन्तु जो उस ओर से विवश होकर छोटे-छोटे बालकों के जीवन का सर्वनाश करते फिरते हैं, इससे अधिक भयङ्कर स्थिति उत्पन्न हो रही है। सुधार प्रिय लोगो को चाहिए कि वे इस ओर अपना अधिक ध्यान दें और समाज मे फैले हुए इस महारोग का विनाश कर डालें। यहाँ हम यू० पी० के सर्वस्व स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के एक लेख को ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं। इससे यह भली भाँति पता चल जायगा कि इस विनाशक आँधी से हमारे समाज और राष्ट्र को कितनी क्षति पहुँच रही है:—

"मनुष्य शिश्नोदर सम्बन्धी वासनाओं का पुंज है। इन्द्रिय सम्यक् रूप से उसके काबू में नहीं है। प्रयत्नशील मुमुक्षु का मन भी इन्द्रियों की व्याधियों से विचलित हो जाता है। मनुष्य-स्वभाव की यह दुर्बलता बड़ी दयनीय है। इस दिशा में अथक परिश्रम करने वाले लोगों ने मानव-समाज के सामने इस विषय की कठिनाइयों का निरूपण बड़े स्पष्ट रूप से किया है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेवाले नरों का मन भी समय-समय पर इन्द्रियों द्वारा आकृष्ट कर लिया जाता है। "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मनः।" मनोनिग्रह का केवल एक ही उपाय है। वह है सतत अभ्यास और वैराग्य। "अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते।" किन्तु आज कल भारतवर्ष के दुर्भाग्य से हमारे यहाँ जिस शिक्षा का प्रचार है, उसमें युवकों के चरित्र-गठन की ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता। सयम, मनोनिग्रह, शारीरिक बल-वर्द्धन और चरित्र दृढ़ता को हमारे शिक्षा-क्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया है। यही कारण है कि हमारे नौजवानों का आचरण बहुत ढीला ढाला-सा रहता है। हमारी वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में बहुत दिनों से एक घातक रोग फैल गया है। बालक और युवक एक दूसरे के साथ नितान्त अवांछनीय रीति से मिलते-जुलते और मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करते नज़र आते हैं। शिक्षा-संस्थाओं के कई अध्यापकगणों की चित्त-वृत्ति भी चिनगारियों के साथ खिलवाड़ करती नज़र आती है। जिन लोगों ने शिक्षालयों, जेलखानों, बोर्डिंग-हाउसों और सिपाहियों के रहने के बैरेक-घरों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है, उनका कहना है कि पुरुषों के बीच आपसी कामुकता इन स्थानों में बहुत अधिक परिमाण में पाई जाती है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। एडवर्ड कारपेन्टर, जे० ए० साइमान्डस, वाल्टविटमेन, हेवलाक एलिस आदि मनीषियों ने मानव-स्वभाव की इस कमजोरी का विवेचन करते समय यह दिखला दिया है कि सुधारकों को इस दिशा में बहुत सोच-

समझकर काम करना चाहिए। स्कूलो, कालेजों तथा उनके छात्रावासो मे जो बालक शिक्षा पाते तथा निवास करते हैं, उनके आचरण की ओर ध्यान देना समाज का मुख्य कर्तव्य है। आजकल समाज के अज्ञान के कारण हमारे छोटे-छोटे निरपराध सुन्दर बच्चे दुष्ट-प्रकृति-मित्रो और पापी शिक्षकों की काम-वासना के शिकार हो रहे हैं। बालको के ऊपर जिस रीति से बलात्कार किया जाता है, उसका थोड़ा-सा विवरण यहाँ देना असामयिक न होगा। जिन सौ-पचास स्कूल-कालेजो के निरीक्षण करने का हमे अवसर मिला है, उन्हीं की परिस्थितियो के अवलोकन से प्राप्त अनुभव के बल पर हम यह सतरें लिख रहे हैं। प्रत्येक स्कूल या कालेज में कुछ ऐसे गुण्डे विद्यार्थियो का समुदाय रहता है, जो सुन्दर बालकों की टोह लिया करता है। जब वे पहले पहल स्कूलो में आते हैं, तब बदमाश मण्डली उन्हे तंग करना, मारना-पीटना, उनकी किताबें छीनना एव प्रत्येक रीति से उनका जीवन भार-भूत बनाना प्रारम्भ कर देती है। बेचारा लड़का कहीं खड़ा है और उसे एक चपत जमा दी। कहीं उसकी किताबें फाड़ फेंकी, तो कहीं उसकी क़लम छीन ली। पहली छेड़छाड़ इस तरह शुरू होती है। लड़का बेचारा मास्टरो से शिकायत भी करे तो उससे क्या? शैतान मण्डली उसे डराती-धमकाती है। उससे कहा जाता है—अच्छा बच्चाजी निकलना बाहर! देखो कैसी मिट्टी पलीद करते हैं तुम्हारी! असहाय बलि-पशु इस प्रकार प्रतिदिन सताया जाता है। धीरे-धीरे वह इन शैतानो से छुटकारा पाने के लिए उन्ही के गुट्ट में शरीक हो जाता है। बस, जहाँ वह इस प्रकार उस गुट्ट में शरीक हुआ कि उसका सर्वनाश प्रारम्भ होता है। जिस स्कूल मे शिक्षक भी उसी फन के हुए, उस स्कूल मे बालको के नैतिक जीवन की मृत्यु ही समझिये दुष्ट साथियो और शैतान मास्टरो की काम-वासना का साधन बना हुआ वह बालक अपनी दुरवस्था कहे तो किससे कहे? माता-पिता से? भला, किस बालक की इतनी हिम्मत है कि वह अपने माता-पिता से ये कष्टदायक

बातें कह सके! बालकों के निन्नानवे फीसदी रक्षकगण इतने मूर्ख होते हैं कि इन बातों को समझ ही नहीं सकते। यदि उनके कान में कभी कोई ऐसी बात पड़ भी जाती है तो वे बजाय इसके कि अपने बालकों के साथ अत्याचार करने वालों की खाल खींच लें, उलटा अपने बच्चों को ही पीटते हैं। बच्चों के लिए एक तरफ खाई और एक तरफ कूआँ की समस्या हो जाती है। इसलिए वे अपना दुःख किसी से नहीं कहते। समाज की क्रूरतामयी उदासीनता एव घृणित मित्रों के पापाचार से पीडित युवक अपने मनुष्यत्व को नष्ट करके अपने भाग्य को कोसा करते हैं। जो बालक इस प्रकार सताये जाते हैं, उनकी वीरता, दृढ़ता, यौवन की उन्मत्तधीरता और मनुष्यत्व का सर्वनाश हो जाता है। वे रात-दिन जननेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों का चिन्तन किया करते हैं। उनकी संजीवनी-शक्ति का ह्रास हो जाता है। उनका पठन-क्रम अस्तव्यस्त हो जाता है। प्रस्फुटित तीव्र-स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। मनुष्य-समाज को अमूल्य रत्न प्रदान करनेवाली क्षमता रखनेवाली मेधा-शक्ति बूँद-बूँद टपक कर धूल मे मिल जाती है। जो मनस्वी हो सकते, जो उदात्त विचारक बनते, जो अमर गायक होते, जो समय पर आरूढ़ होकर अपनी मनचीती दिशा मे उसे घुमा सकते, वे मानव-समाज के भावी नेतागण, जीवन-प्रारम्भ के प्रथम चरण में ही बर्बरता, नृशसता, दुश्चरित्रता और दौरात्म्य की ज्वाला में झुलसकर मृतप्राय हो जाते हैं। हमारे पास इस समय स्कूल-कालेजों की आचरण-भ्रष्टता को प्रमाणित करने वाली कोई ऐसी तालिका नही है जिसके आधार पर हम इस भयानक महामारी की सर्वव्यापकता को सिद्ध कर सकें। लेकिन सत्यान्वेषण का तरीक़ा सख्या-सूची के अलावा और कुछ भी है। वह है अपनी आन्तरिक अनुभव शक्ति। उसी के बल पर हम अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक यह कहते हैं कि आजकल हमारे अधिकांश विद्यालय इस रोग से आक्रान्त हैं। अभी तक इस विषय की ओर किसी ने ठीक तरीक़े से समाज का ध्यान नहीं खींचा है। इस विषय

का साहित्य लिखा जरूर गया है; लेकिन उससे सामाजिक सद्भावना के जागरण में जितनी सहायता मिलनी चाहिए थी उतनी नहीं मिल सकती। सामाजिक जीवन के इस अंग का चित्रण करने के लिए ऐसे साहित्य की जरूरत है जो समाज को तिलमिला दे; लेकिन उसे उस प्रकार की वासनाओं की ओर झुकाने का काम न करे। बदमाश के अनाचारो का चित्रण ऐसा सरस और मोहक न हो कि उसी की ओर रुझान हो जाय। जरूरत है समाज के हृदय को जलाने की, न कि उसे गुदगुदाने की। लेकिन जब तक समाज की आँखें नहीं खुलतीं, तब तक के लिए क्या यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न योंही छोड़ दिया जाय? नहीं, इसके प्रतीकार की आवश्यकता है। माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपने बालकों के प्रति इस सम्बध मे अत्यन्त सहानूभूति-पूर्ण व्यवहार करें। बालकों के मन से यह भय निकल जाना चाहिए कि उनकी कष्ट-कथा यदि उनके अभिभावक सुनेगें, तो वे उल्टा उन्हीं को दण्ड देंगे। जब तक बच्चों के दिल मे यह भय है, तब तक वास्तविक परिस्थिति का पता लगाना असम्भव है। बालकों के रक्षकों का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चो मे अपने स्वयं के प्रति पूर्ण विश्वास और प्रेम के भाव उत्पन्न करें। सरकार यदि चाहे तो इस विषय मे बहुत कुछ सहायक हो सकती है। हमारे पास बहुधा ऐसे सम्वाद आते रहते हैं, जिनमें डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के शिक्षको की दुश्चरित्रता का उल्लेख रहता है। इस प्रकार के शिकायत-पत्रो का बराबर आते रहना शिक्षा संस्थाओ के दूषित होने का लक्षण है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा-संस्थाओं तथा छात्रालयों के अध्यापको, निरीक्षको और छात्रो मे प्रचलित दुर्गुणों और दुराचारो की जाँच करने तथा अत्याचारो को निर्मूल करने के साधनों की सिफारिश करने के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार एक कमेटी बना कर इस प्रश्न की गुरुता और व्यापकता का ठीक-ठीक पता लगा सकती है। बिहार और उड़ीसा की सरकार ने सन् १९२१ ई० मे

आरम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमेटी बैठाई थी। उस कमेटी की एक उपसमिति ने स्कूलो के सदाचार के प्रश्न पर विचार किया था। उस कमेटी ने इस सम्बन्ध में अपनी जो रिपोर्ट पेश की है, उसका विवरण हम किसी अगले लेख मे देंगे। इस समय तो हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि विहार-सरकार की तरह यदि यू० पी०, सी० पी०, पंजाब, आसाम, वगाल आदि प्रान्तो की सरकारें भी इस प्रश्न की व्यापकता का पता लगाने का प्रयत्न करें तो बड़ा भारी काम हो सकता है। यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक सदाचार के प्रश्नो पर लिखने वालो के कन्धो पर बडी जबर्दस्ती जिम्मेवारी होती है। सम्भव है, हमारे पाठको को यह प्रश्न किंवा इस पर कुछ लिखना और इसकी खुले खजाने चर्चा करना—अश्लील जँचे, लेकिन बालको की रक्षा के लिए जो चिन्ताशील हैं, वे इस ओर जरूर आकृष्ट होने की दया दिखाएँगे। हम प्रारम्भिक, माध्यमिक और हाई स्कूल के हेडमास्टरो, कालेज के प्रिन्सपलो तथा इस प्रश्न को सुलझाने की चिन्ता करनेवाले अन्य विद्वज्जनो से इस सम्बन्ध में विचार करने तथा इस दुर्गुण से मुक्ति पाने का उपाय सोचने की प्रार्थना करते हैं।"

स्वप्न दोष से हानि

मनुष्य स्वभाव ही से विलासी होता है। वह स्वभाव से ही अपनी इन्द्रियो की ओर प्रवृत्त होता है। यद्यपि प्रकृति की ओर से उसे ऐसी शक्तियाँ मिली हुई हैं जिनसे वह अपनी इन्द्रियो की लोलुपता को विनष्ट कर सकता है अथवा उनके ऊपर अपना नियन्त्रण पूर्ण शासन रख सकता है। पर वह प्रकृति की ओर से दी हुई अपनी उन शक्तियो का मूल्य नहीं पहचानता और न उनका वास्तविक उपयोग ही करता है। केवल अज्ञानतावश, स्वातन्त्र्य विचारो से रहित एक गुलाम की भाँति उनके संकेतो पर नाचने लगता है। इन्द्रियाँ तो स्वभावतः हठी और शासन को न पसन्द करनेवाली होती हैं। एकबार जिसे अपने चंगुल

में फँसाया, जिसकी आत्म-शक्तियों पर अपना प्रभाव स्थापित किया, तो फिर उसे उसके जीवन भर नहीं छोड़तीं। वह मनुष्य उन इन्द्रियों के वशवर्ती बनकर संसार में मर्कट की भाँति नाचा करता है। न उसके जीवन की सत्ता रह जाती है और न उसकी मनुष्यता के चिह्न। उसका जीवन कुत्ते के जीवन से भी बदतर और घृणित हो जाता है। संसार की लांच्छनाएँ तथा घृणित अवस्थाएँ ही उसे ससार की ओर से भेंट-स्वरूप मिलती हैं।

मनुष्य की इन इन्द्रियो मे शरीर के ऊपर जिसका प्रबल शासन है, जो मानव-चेतना को विनष्ट करने के लिए सदैव उत्तेजित-सी रहा करती है और जो अपनी उत्तेजना पर संसार के सारे धार्मिक कार्यों को भी खाक कर डालती है, वह है जनेन्द्रिय। प्रत्येक मनुष्य इसका गुलाम होता है। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं, जो इससे अपना पिण्ड छुड़ाकर अपनी मानवीय शक्तियो की रक्षा कर सके। यद्यपि इस इन्द्रिय से ही संसार का प्रसार और विकास होता है; पर, इसके लिए प्रकृति की ओर से एक नियम और विधान है। जब मनुष्य अधिक पापी और वासना-लोलुप बनकर प्रकृति के इन नियमों का उल्लंघन कर बैठता है, तब इसी इन्द्रिय से प्रचार और विकास के बदले संसार का महानाश होता है। आज वर्तमान दुनियाँ में इसी महा-विनाश की चक्की चल रही है। कोई ऐसा बूढ़ा, कोई ऐसा युवक, कोई ऐसा प्रौढ़ और कोई बालक नहीं बचा है, जो अपनी जनेन्द्रिय का खरीदा गुलाम बनकर ससार के महाविनाश की तैयारी न कर रहा हो। जो वंश सभ्यता का दम भरते हैं, जो राष्ट्र-शिक्षा के मैदान में अपने को सब से आगे बताते है, उनके अन्दर भी मानवता का विनाश हो रहा है। उनकी गोद में पलनेवाले बच्चे और युवक, उसी भाँति महारोगों के शिकार हैं, जिस प्रकार इस अभागे भारतवर्ष के। कहने की आवश्यकता नहीं; किन्तु फिर भी मैं दावे के साथ कहूँगा कि भारत के प्राचीन गौरव तथा उसकी प्राचीन संस्कृति ने और देशों के युवकों

की अपेक्षा, यहाँ के युवकों की कुछ अधिक अंश में रक्षा की है। यदि भारत की वह प्राचीन संस्कृति भारत के साथ न होती, यदि भारत के प्राचीन ब्रह्मचर्यमय-जीवन की महत्ता और उसका इतिहास धुँधले रूप में भी भारतीयों के सामने न होता तो आज भारतीय युवकों में सदाचार की जो ढीली साँस चल रही है, उसका कभी अन्त हो गया होता। और भारत से जीवन और जागृति की आशा सदा के लिए प्रत्येक मानव-रूप से कूँच कर जाती।

जो हो, किन्तु फिर भी इस समय भारतीय नवयुवकों मे कदाचार की एक भयंकर लहर चल रही है। वे हस्त-मैथुन और गुदा-मैथुन द्वारा अपनी जीवन-शक्तियों का विनाश कर रहे हैं। स्कूल और कालेजो के मास्टर, धार्मिक-संस्थाओं के उपदेशक तथा देवी-देवताओ के पडे-पुजारी भी आज इसी पिशाची-वृत्ति में लिपटे हुए देख पड़ते हैं। यही कारण है कि आज समाज का कोई भी मनुष्य स्वप्न दोष-जैसे भयंकर रोग से बचा हुआ नहीं पाया जाता। सभी रात की अपनी प्रगाढ़ निद्रा में इस महारोग के शिकार होते हैं। नवयुवको के सिर पर तो इस रोग की भयानक चक्की-सी चल रही है। वे दिन भर स्त्रियों की खोज में रहते हैं। कोमल और फूल-से सुकुमार बालकों के जीवन को धूल में मिलाने के लिए प्रयत्न करते हैं। सड़कों, रास्तों और गली-कूँचों में गन्दे गानो की बाँसुरी बजाया करते हैं और रात में सोने पर नींद मे उन्हीं के साथ विचरण किया करते हैं। उन्हें ऐसा मालूम होता है मानों वह स्त्री अथवा वह बालक उनके शरीर में लिपटा हुआ उन्हें प्यार कर रहा है। बस, केवल इतने ही में उन अशक्त हृदयवाले पापियो का वीर्य धोती-बिछावन पर गिर जाता है और उनकी निद्रा खुल जाती है। फिर जगाने पर उनके हृदय में जो पश्चात्ताप, जो दारुण घृणा और जो उदासीनता पैदा होती है, वह उन्हीं से पूछकर जानने की वस्तु है!

स्वप्न-दोष होने के अनेकों कारण हैं। पर उनमे सब से प्रबल

कारण अप्राकृतिक मैथुन ही है। इससे नसें अशक्त हो जाती हैं। उनकी वीर्य-धारण की शक्ति न्यून हो जाती है। अतः किसी साधारण कामोत्तेजक पदार्थ या दृश्य से ही उनके शरीर का वीर्य बह निकलता है। इसके प्रतिकूल जो मनुष्य ब्रह्मचारी होता है, उसे कभी भी स्वप्न-दोष नही होता। अमेरिका के एक प्रसिद्ध डाक्टर का कथन है कि मनुष्य को स्वप्न दोष केवल अप्राकृतिक मैथुन और मानसिक विकारो के ही कारण होते हैं। जो हो, पर स्वप्न दोष से मानव-शक्ति का अधिक अश मे ह्रास होता है। मनुष्य की चेतना भ्रष्ट हो जाती है। वह मृगी-जैसे भयकर रोगो का शिकार बन जाता है। यूरोप के एक डाक्टर ने लिखा है—'मुझे अब तक जितने रोगियो को देखने का मौका मिला है, उनमे से अधिक मृत्यु के निकट पहुँच गये थे।'

स्वप्न दोष का कारण

वास्तव मे स्वप्न-दोष मृत्यु है। इस रोग में फँसकर फिर मनुष्य इससे अपना पिड नही छुड़ा सकता। एक नहीं, चाहे वह सैकड़ों शक्ति-वर्द्धक औषधियो का सेवन क्यो न करे। यह तो तभी छूट सकता है, जब मनुष्य अपने मानसिक विकारो को त्यागकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे। ससार में ब्रह्मचर्य ही मानव जीवन के लिए सजीवनी-शक्ति है। इसलिए प्रत्येक विचारशील मनुष्य को इसी का अवलम्ब लेना चाहिए।

संसार पुरुषत्त्व का कार्य-क्षेत्र है। जहाँ ही देखिए, वहीं, इसकी सार्थकता गूज रही है। यदि ससार के बीच से हम पौरुष को अलग कर दें, तो वह उसी खोखले काठ की तरह निकम्मा हो जाय जो बाहर से सुन्दर देखने पर भी किसी काम का नहीं रहता। पौरुष और मानव-शरीर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संसार, पौरुष का कार्य-क्षेत्र है, पर मानव-शरीर की सम्पूर्ण सत्ता इसी के बल पर आश्रित है। यों तो संसार के सभी जीवों में पौरुष का महत्त्व और पौरुष की महिमा है, पर हमें यहाँ

नपुंसकता

केवल मानव-जीवन ही से तात्पर्य है और इसी जीवन में [illegible] की अखड महिमा समाई हुई है। किसी को देखिए, उसी के अन्दर पौरुष की प्राकृतिक ज्योति विहँस रही है। जिस दिन यह शरीर से निकल जायगा, उस दिन प्राणों का अस्तित्व रहते हुऐ भी शरीर निकम्मा बन जायगा। सारा संसार मरुस्थल की तरह सूना और दुखदायी प्रतीत होने लगेगा। इन्द्रियों के उपयोग की शक्तियाँ जाती रहेंगी। ससार की सुखमयी सामग्रियाँ काँटे की भाँति चुभने लगेंगी। न तो अपने शरीर का संचालन किया जा सकेगा और न परिवार वर्ग का। नैराश्य और निरुत्साह का भडार-सा जमा हो जायगा। सुख और सन्तोष की नितान्त कमी हो जायगी। किसी काम में सफलता प्राप्त करना मुश्किल हो जायगा। इसी लिए किसी विद्वान ने कहा है कि संसार में सब कुछ बर्बाद करके भी पुरुषत्त्व का संग्रह करना चाहिए। जिसके पास पौरुष है, वही ससार की परिस्थितियों का विजेता समझा जाता है।

मानव-शरीर में पौरुष का होना वीर्य पर अवलम्बित है। वीर्य की वृद्धि ही पौरुष की वृद्धि करती है और उसका अभाव मनुष्य को नपुसक तथा अशक्त बना देता है। जिस पुरुष में जितना वीर्य होगा अथवा जो संयम और प्राकृतिक विधानो द्वारा अपने वीर्य की रक्षा में जितना ही तन्मय रहेगा, वह उतना ही अधिक बलशाली और पुरुषार्थी होगा। उसका जीवन तथा उसका पारिवारिक-सुख ससार में उतना ही सन्तोषमय होगा। पर, जो अपने वीर्य को पानी की भाँति बहायेगा, जो प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर सदैव अप्राकृतिक व्यभिचारों में तन्मय रहेगा, वह अधिक निकम्मा और नपुसक हो जायगा। वह न तो संसार की किसी परिस्थिति को अपने अनुकूल बना सकेगा और न अपने जीवन को सुखी ही कर सकेगा। वह इस ससार मे जीवित रहते हुऐ भी मृतक के समान रहेगा और पृथ्वी को उसका भार धारण करने में दुःख-सा मालूम होगा।

मनुष्य नपुंसक क्यो हो जाता है? उसमें बसनेवाली पौरुष-

शक्ति कहाँ और किस प्रकार उड़ जाती है ? इस सम्बन्ध में विचार करते हुऐ एक जर्मन डाक्टर ने अपनी एक पुस्तक मे लिखा है—'ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जिस दिन मेरे पास सैकड़ों युवक अपनी जीवन-रक्षा के लिऐ न आते हो। उन सबके मुख से केवल एक यही प्रश्न निकलता है—'मेरी खोई हुई पौरुष-शक्ति मुझे पुन: कैसे प्राप्त हो सकती है ?' ऐसे युवकों को उचित सांत्वना देते हुऐ मैंने उनसे पूछा कि उनकी यह पौरुष शक्ति कैसे और कहाँ खो गई ? यह तो प्रकृति की ओर से मिली थी। उसकी कुंजी प्रकृति के ही हाथ मे है। फ़िर किस डाकू ने प्रकृति की उस सम्पत्ति पर आक्रमण कर उसे चुरा लिया। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन युवकों के मुख से जो शब्द निकले उन्हे सुनकर मैं काँप गया। मेरी अन्तरात्मा जोर से चीख मारकर चिल्ला उठी कि तुम्हारी पवित्र शक्तियो का विनाश क्या इस प्रकार राक्षसी-लीला से किया जा सकता है ? ओह ! उन्होंने जो उत्तर दिये, उसका तात्पर्य यही था—क्या कहूँ डाक्टर साहब ! प्रकृति की दी हुई इन सम्पति-सामग्रियो को किसी डाकू ने नहीं लूटा है, वरन् मेरी ही अज्ञानता-रूपी पिशाचिनी ने। अप्राकृतिक व्यभिचारों द्वारा मैंने अपने पुरुषत्त्व को खाली कर दिया और अब उसी के लिए, भिखारी बनकर दर-दर भीख माँग रहा हूँ।

सचमुच आज समाज मे ऐसे करोड़ों नवयुवक हैं, जिन्होने जान बूझकर, सोच-समझकर अप्राकृतिक मैथुन के अग्नि में अपने पुरुषत्त्व को जला दिया है। उनके शरीर में न कान्ति है और न तेज, न साहस है और न उद्यम-शीलता। यही कारण है कि आज समाज असन्तोष का भण्डार-सा बनता जा रहा है। समाज की रचना उन्हीं नवयुवको और बच्चो के बल पर होती है। जब उनकी यह दशा है तब फिर समाज का क्यों न पतन होगा ! क्यों न वह नपुंसक बन कर ससार के सामने हाय-हाय करेगा ?

सातवाँ अध्याय

वीर्य-रक्षा की आवश्यकता

कुरान, बाइबिल तथा हिन्दू शास्त्रो के अनुसार भी ईश्वर की शक्तियाँ मानव-शरीर मे समाई हुई हैं, परन्तु इस सिद्धान्त को मानकर यहाँ इसकी आलोचना करना कि मानव-समाज पाप की ओर अधिक वेग से अग्रसर हो रहा है, अत्यन्त कठिन और दुरूह-सा है। यहाँ तो मानव-जीवन हमारे लिए एक ऐसा तत्त्व है, जिसके विकास की कुंजी, उसी के हाथों में प्रकृति की ओर से मिली हुई है। वही अपने जीवन-तत्त्वों का विकास कर सकता है और वही उनका विनाश भी। वही उन्हें उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाकर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकता है और वही उन्हें पतन के गह्वर में ढकेलकर अपना सर्वनाश—महाविनाश कर सकता है।

उत्तरदायित्व ?

वास्तव में मानव-जीवन का ह्रास केवल वासना के ही कारण हो रहा है। वह इसी की मोहमयी कामना में फँसकर अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्यो को भूला जा रहा है। किसी ने कितना अच्छा कहा कि वासनाओं पर संयम रखना ही स्वर्ग तथा उसकी आबाधता नरक है। स्वर्ग और नरक की यह परिभाषा मानव-जीवन पर ही घटित होती है। दोनो उसी के शरीर में समान रूप से समाये हुए हैं। किसी को पाना तथा किसी को न पाना मनुष्य के हाथ मे ही है। यदि मनुष्य चाहे तो वह स्वर्ग का राजा हो जाय और यदि वह चाहे तो नरक का कीड़ा बन जाय; परन्तु वह विचार से काम नहीं लेता। वह अज्ञानतावश वासना की भयंकर अग्नि में पतिङ्ग की तरह जल रहा है।

मानव-जीवन वासना और कामना से भरा हुआ है। वह प्रतिदिन प्यासे मृग की भाँति, बालू के चमकते हुए कणो को देखकर मरुस्थल में इधर-उधर दौड़ा करता है। पर उसकी प्यास नहीं बुझती। वह निरन्तर गिरता पड़ता और लड़खड़ाया करता है। उसे दिन-रात असफलताओं और सांसारिक परिस्थितियो का सामना करना पड़ता है। अतः उसे इस बात की आवश्यकता रहती है कि वह संसार में अपने को इतना बली और शक्तिशाली बनाये कि संसार की परिस्थितियाँ उसका कुछ बिगाड़ न सकें। दूषित भावनाएँ उसके सामने न आ सकें और वह पाप की भयकर ज्वाला में अपने को बर्बाद न कर सके। इन सबो के लिए मानव-शरीर को प्रकृति की ओर से एक तंत्र मिला हुआ है। यह वही तंत्र है, जिससे मानव-शरीर का विकास होता है, जिससे जीवन की शक्तियाँ उसमे आकर सन्निहित होती हैं और जिसके बल पर वह ससार को जीतने की अभिलाषा करता है। इस तंत्र को बूढ़े बच्चे और जवान सभी जानते हैं। गरीब, क्या अमीर, क्या फकीर, प्रकृति ने सभी के शरीर में अपने हाथों से इस तंत्र का धागा बाँधा है। मनुष्य चाहे उसे तोड़कर फेंक दें या मजबूत बनाये, यह उसका काम है।

प्रकृति के इस तंत्र का नाम है मानव-शरीर का वीर्य। वीर्य क्या वस्तु है ? इस सम्बन्ध मे पहले ही बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ तो हम एक दूसरे विषय की ही आलोचना करेंगे। मानव-जीवन की चार अवस्थाएँ हैं। प्रथम अवस्था को बाल्यावस्था कहते हैं। मनुष्य जब इस संसार में आता है तब सबसे पहले यही अवस्था उसका स्वागत करती है। यही उसे अपनी गोद में लेती है। इस अवस्था में मनुष्य अबोध और अज्ञान रहता है। उसका शरीर भी अशक्त और क्रिया-हीन-सा होता है। ज्यो-ज्यो मनुष्य की अवस्था आगे की ओर बढ़ती है, त्यों-त्यो उसका शरीर भी सबल और सुदृढ़ होता जाता है। कुछ दिनों के बाद उसके शरीर मे एक ऐसा परिवर्तन

आता है, जिसे देखकर वह स्वयं आश्चर्यचकित हो जाता है। उसका शरीर सहसा उत्तेजना से भर जाता है। नस-नस मे जीवन की एक लहर-सी दौड़ पड़ती है। उसका चेहरा कान्ति और प्रभा से हँस उठता है। मांस-पेशियाँ भर जाती हैं, मुख के ऊपर चिकने और छोटे-छोटे बाल निकल आते हैं। मानव-शरीर का यह परिवर्तन यौवन के नाम से पुकारा जाता है। बालको के सोलह और बालिकाओं के तेरह वर्ष की अवस्था में यह परिवर्तन उनके शरीर में आता है।

यौवन अपने आगमन के साथ ही मानव-शरीर में एक बिजली-सी शक्ति उत्पन्न करता है। वह आकर बहुत दिनों के सोये हुये मानव-शरीर मे रहने वाले वीर्य को जगाता है।

यौवन की आंधी

शरीर का राजा वीर्य, जाग कर शरीर मे उत्तेजना भरता है। यौवन को सबल और पुष्ट बनाता है। शरीर के अंग-प्रत्यग मे जीवन की ज्योति सी जलाकर हृदय को उत्साह और कामनाओ का भण्डार-सा बना देता है, कोने-कोने में उथल-पुथल मच जाती है, आँखों मे मद, मन मे उन्माद और शरीर में उत्साह का साम्राज्य-सा बस जाता है। यह है वीर्य का प्रभाव! इसी के ऊपर मानव शरीर का भावी सुख और भावी स्वास्थ्य निर्भर रहता है। पर वीर्य के लिए मानव-जीवन की यह अवस्था अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य ने यौवन की चचलता मे वीर्य को बहा दिया, यदि उसने उसके व्यापक प्रभाव को न सहकर उसकी सत्ता को धूल में मिला दिया, तो मनुष्य का सारा जीवन भारस्वरूप हो जाता है। उसे दिन-रात चिन्ताओं और व्याधियो का ही सामना करना पड़ता है। अतः मनुष्य को यौवन में, अपने मन की प्रवृत्तियो को संयम से कसकर बाँधे रहना चाहिए। व्यायाम इसके लिए उपयुक्त साधन है। प्रत्येक नवजवान को प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए। उपदेश और ब्रह्मचर्य के भावों से भरी पुस्तकें पढ़नी चाहिए। ससार के महापुरुषों

के चरित्रों का अध्ययन करना चाहिए। ईश्वर और ब्रह्म का चिन्तन करना भी उनका धर्म होना चाहिए।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए वीर्य-रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। जब वीर्य मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होता है, तब वह पानी की भाँति तरल और पतला होता है। यह वीर्य किसी काम का नहीं होता। मनुष्य की अवस्था-वृद्धि के साथ ही उसका वीर्य भी गाढ़ा होता है और उसकी पूर्ण यौवनावस्था में अत्यन्त सबल और शक्तिशाली हो जाता है, किन्तु वह ऐसा तभी हो पाता है, जब उसके पतले रूप की रक्षा की जाय। यदि वह असमय में ही अज्ञानता से बहा दिया गया अथवा नष्ट कर दिया गया तो फिर उसका विकास नहीं होता। शरीर भी काला तथा क्षीण हो जाता है, आती हुई शक्तियाँ लौट जाती हैं। अतः भावी विकास के लिए वीर्य के उस पतले रूप की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

किन्तु अज्ञान बालक थोड़ी-सी उत्तेजना और उद्रेक को बर्दाश्त न कर उस वीर्य का विनाश करने लगते हैं। वे या तो इस वीर्य का विनाश हस्त-मैथुन द्वारा करते हैं या गुदा मैथुन द्वारा। उनको इसमें आनन्द अवश्य आता है, पर उनकी जीवन-शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। यौवन में ही उन्हें बुढ़ापा आ घेरता है और कैशोर में ही उन्हें पागलपन, शिर-पीडा, दौर्बल्य, बहुमूत्र, अजीर्ण आदि भयानक रोग घेर लेते हैं। ऐसे बालक, पुरुष होने पर जो सन्तान पैदा करते हैं, वह भी उन्हीं की भाँति मरी हुई और निर्जीव होती है। उससे समाज का उपकार नहीं, वरन् अपकार होता है। समाज कमजोर हो जाता है। राष्ट्र अशक्त बन जाता है। चारों ओर मुर्दा-दिली का बाजार गर्म हो जाता है। पाप और असन्तोष काल की तरह मुँह फैलाकर लोगों का विनाश करने लगते हैं। महामारी, हैजा और विसूचिका अपना चक्कर लगाती रहती हैं। कहाँ तक कहें, इस थोड़ी-सी अज्ञानता के कारण ही मानव-जीवन का सर्वनाश हो जाता है—राष्ट्र और समाज का

अस्तित्व चला जाता है।

आज भारत की यह दशा क्यों है? आज भारतीय समाज क्यों निःशक्त बनकर हाय-हाय कर रहा है? कारण साफ और प्रकट है। आँखो के सामने घूम रहा है। जो एक बार भारतीय युवकों की ओर आँख उठाकर देख ले उसे यह भली-भाँति विदित हो जायगा कि भारत क्यों अशक्त है? क्यों वह आज दुखों के शिकजे में फँसा हुआ करुण-रोदन कर रहा है? दस वर्ष की बात है। यूरोप का एक सुधार-वादी अंग्रेज भारत के नगरों का परिभ्रमण करने आया था। अपना परिभ्रमण-कार्य्य समाप्त कर जब वह लौटकर यूरोप गया तब उसने एक सभा में भारत के विषय में व्याख्यान देते हुए कहा था कि जिस देश में ऐसा कोई भी युवक देखने में नहीं आता, जिसके चेहरे पर तेज, लाली, साहस का भाँव हो, वह देश स्वातन्त्र्य-सुख का दावा करे तो उसकी अज्ञानता नहीं तो और क्या है? वास्तव में यही दशा है। यहाँ के नवयुवक और कैशोर बालक जब अपने शरीर का विनाश ही करने में लगे हुए हैं तब फिर राष्ट्र और समाज का कैसे उत्थान होगा? भारतीय नवयुवको के लिए बड़े दुःख की बात है। उन्हें चाहिए कि सच्चरित्र बनकर ससार के सामने आवें। राम और कृष्ण के नाम को सार्थक कर वे 'सार को यह बता दें कि हम उन्हीं की भांति ब्रह्मचारी और देश तथा समाज सेवी हैं? हमने अपने पुराने कलंको को बिल-कुल धोकर बहा दिया है। अब हमारा चरित्र स्वर्ग से भी पुनीत और पवित्र है।

देश और समाज के ऊपर इसका प्रभाव तो पड़ता ही है; किन्तु मनुष्य की दशा स्वयं शोचनीय हो जाती है। उसका स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। सौंदर्य उसके शरीर से भाग-सा जाता है। उससे जो सन्तान उत्पन्न होती हैं, वह भी अत्यन्त निर्बल और अशक्त ही होती हैं। इस-लिए प्रत्येक मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा करनी चाहिए। संसार में वीर्य-रक्षा ही जीवन और वीर्य का विनाश करना ही मृत्यु है।

आठवाँ अध्याय

समाज की प्रचलित कुरीतियां

बालकों से समाज की रचना होती है और समाज से बालकों की। दोनों का उत्थान एक दूसरे के ऊपर निर्भर करता है। दोनों एक दूसरे की शक्ति लेकर ही अपने उन्नति रूपी दुर्ग का निर्माण करते हैं। परन्तु इस निर्माण में समाज का ही अधिक हाथ रहता है। कारण, समाज की सहायता और शक्ति बालकों को पहले ही अपेक्षित होती है। बालक अशक्त एवं कमजोर अवस्था में समाज की ही गोद में उत्पन्न होता है। समाज उसका पालन करता है, समाज उसे शिक्षा देता है तथा वही उसे अन्धकार की दुनिया से उठाकर प्रकाशमय जगत् में लाता है। समाज में जितना बल होगा, समाज में जितनी शक्ति होगी, उतना ही बल और उतनी ही शक्ति बालक के हृदय में होगी। पर समाज आज बालकों की ओर से निश्चेष्ट है। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका आदर-सम्मान, उनका भरण-पोषण, उनका विकास और प्रसार सभी समाज की ओर से उपेक्षित हैं। यद्यपि आज संसार में चारों ओर अधिकार-सग्राम मचा हुआ है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी अपने मानवी अधिकारों के लिए लड-झगड़ रहे हैं। सभी अपनी विकास-सम्पत्ति के लिए आकुल और बेचैन है; किन्तु फिर भी हम एक अन्यायी और स्वेच्छाचारी शासक की भांति बालकों को उनके विकास-जगत् में नहीं जाने देते ! उन्हें उन साधनों और परिस्थितियों से खुलकर नहीं खेलने देते, जिनसे उनका विकास होता है, जिनसे वे

बालक और समाज

शक्तिशाली और सबल बनकर समाज तथा राष्ट्र का कल्याण करते हैं। यह हमारी महान अज्ञानता नही तो और क्या है ?

ससार में शक्ति का साम्राज्य है। जिसके हाथ मे इस शक्ति की बागडोर है, जो अपने में हलचल और तूफान मचाने की शक्ति रखता है, उससे सभी भयभीत रहते हैं और वही संसार मे सब कुछ कर भी सकता है। पर बालक अज्ञान हैं, निर्बल हैं। चाहे उनका गला मरोड़कर मार डालो, चाहे उन्हें जीवित रक्खो, चाहे उन्हे समुद्र की गर्जती हुई लहरों में फेंक दो, चाहे अपनी गोद में स्थान दो। वे लाचार और विवश हैं। वे विरुद्ध में एक शब्द भी न कहेंगे, किन्तु इससे क्या होगा ? बालकों के मानवी अधिकारो को हडप कर क्या कोई संसार में अपने अधिकारों की रक्षा कर सकता है ? क्या कोई उन्हें साहस और प्रकाश से वचित रखकर स्वय साहस और प्रकाश की दुनिया में रह सकता है ? नही, बालको के पतन के साथ ही उसका भी अधः पतन होगा, उसका भी विनाश होगा।

परन्तु इस उन्नति के युग में हमारी स्वेच्छाचारिता अधिक दिनों तक न चल सकेगी, हमारा यह जघन्य पाप अब अधिक दिनों तक पर्दे की ओट मे न छिपा रह सकेगा। हम छिपाने का प्रयत्न भी करेंगे तो हमारी कमजोरियां और हमारा पतन सारे संसार को बता देगा कि हम क्या कर रहे हैं और क्यो पतन की ओर दिन-रात बराबर खिसकते जा रहे हैं। आज भी हम केवल अपनी इसी उपेक्षा के कारण पतन की आँधी में इधर से-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। हमारी इसी भूल ने हमें उस स्थान पर लाकर बैठा दिया है, जिसकी हमें कभी आशा भी नहीं थी। यह बात नहीं कि हम बालको के जीवन की उपयोगिता को नहीं जानते, उनके भावी विकास के परिणामो को नही पहचानते। हम जानते और पहचानते हुए अज्ञान के मार्ग पर बराबर कदम बढ़ाये जा रहे हैं—बराबर उन्हें अन्याय की चक्की में पीसे जा रहे हैं। हमें यह अच्छी तरह से विदित है कि आज जो धूल में खेल रहे हैं—आज जो

अपने आंतरिक भावों को प्रकट करने मे पूर्ण रूप से असमर्थ हैं, वे ही कल दुनिया मे ऐसे महान कार्य करेंगे जिन्हे देखकर सारा संसार आश्चर्य प्रकट करेगा। वे ही सच्चे शूर और सिपाही बनकर रण-स्थल मे बड़े-बड़े शत्रुओं को दहला देंगे। वे ही समाज और राष्ट्र के अधिनायक बनकर उसकी डूबती हुई नौका को उस पार ले जायँगे। और वे ही हमें उस दुनिया और प्रकाश में लायेंगे जिसमें हमारे मानवी गुणो का विकास होगा।

फिर हम अज्ञानता क्यो करते हैं? क्यो उन्हे ईश्वर के भरोसे छोड़कर उनकी शक्तियों का विनाश करते हैं? इसके उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि सदियो की गुलामी के कारण हम अपना अब तक सब कुछ भूल गये थे। हमारी उन्नति की चेष्टा खाक में मिल गई थी। हम बालको के जीवन की उपयोगिता को जानते हुऐ सुधार न सके, उन्हे प्रकाश की दुनिया मे न ला सके। हमारा जीवन स्वयं अपगु था। फिर हमारे बालको का जीवन कैसे उत्थानमय होता? कैसे वे उन्नति के प्रकाशमय जगत् में आ सकते थे? जैसे हम थे, वैसे हमारे बालक। किन्तु अब संसार के थपेड़ो ने हमें जगा दिया। हमारी उन्नति की चेष्टाएँ भी अब जाग-सी पड़ी हैं। अब हम यह समझने लगे हैं कि बालको की ओर से उदासीन रहकर हम अपनी उन्नति नहीं कर सकते। उन्हे अन्धकार मे छोड़कर हम अपनी सामाजिक और राष्ट्रीय शक्तियों को सुदृढ नही बना सकते। अतः अब हमें अपने भावी बच्चो के सुधार के लिए अभी से तन्मय हो जाना चहिऐ। उन्हें योग्य वीर पुरुष बनाने के लिए हमे अभी से वीर बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

ससार के सभी सभ्य राष्ट्रो ने इस क्षेत्र मे पर्याप्त उन्नति की है। वे अपने बालको की शिक्षा दीक्षा में काफी अग्रसर हो रहे हैं। वे बालको का लालन-पालन तथा उनका भरण-पोषण अपने उच्च विचारवाली सरकारो से कराते हैं। उनकी सरकारें स्वय इस विषय में

दत्त-चित्त रहती हैं। जिस प्रकार राष्ट्र के अन्यान्य कार्यों में वे अपना उत्तरदायित्व समझती हैं, उसी प्रकार बालकों के भरण-पोषण में भी वे अपनी जिम्मेदारी समझती हैं। इसीसे वहाँ ऐसे अस्पताल और आश्रम बने हुऐ हैं, जहाँ बालको की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध है। राष्ट्र के प्रत्येक बालक को इन आश्रमो और अस्पतालो में रहना पड़ता है। वहाँ बालको के गुणो का विकास होता है। वे सभ्य और सुशील बनाए जाते हैं। उनके हृदय मे मानवी-गुणों का समावेश कराया जाता है। वहाँ से निकलकर बालक जब दुनिया के सामने आते हैं तब वे एक योग्य और चतुर नागरिक होते है।

पर हम ऐसा नही कर सकते। हमें तो केवल उन्हीं मार्गों पर चलना होगा, जिन पर हम प्रकृति की ओर से चल सकते हैं और जिन पर चलने के लिऐ हमें किसी के आदेश और नियन्त्रण की आवश्यकता न पड़ेगी। हमारे लिए यह मार्ग है—अपनी सामाजिक कुरीतियों का विध्वस करना। जब तक हम इसका विनाश नहीं कर लेंगे, तब तक हमारे समाज और राष्ट्र के अन्दर वे बालक नहीं दिखाई पड़ेंगे, जिनकी हम कामना कर रहे हैं। इस सम्बन्ध मे हमें भावी बालको के लिऐ केवल दो प्रश्नो पर ध्यान देना पड़ेगा। एक तो यह कि किन-किन मनुष्यों को सन्तान नही उत्पन्न करनी चाहिए और दूसरा यह कि जिनको सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए, उन्हें कितनी। इन दो प्रश्नो की समस्या यदि हल हो जाय तो समाज और राष्ट्र का अनेक अशों में कल्याण हो सकता है। पर इस समस्या का हल करना वहुत मुश्किल है। समाज में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जिसे बच्चा पैदा करने की अभिलाषा न हो। सभी बच्चा पैदा करना चाहते हैं, सभी अपने दूषित और रोगो से भरे हुए वीर्य द्वारा विकास—सृष्टि करना चाहते हैं? रोगी, कामी, पापी, पागल, व्यभिचारी इत्यादि जितने भी राक्षस पुरुष हैं, वे सब समाज की गोद मे एक बच्चा डालना चाहते हैं। चाहे वह राक्षस हो, चाहे मनुष्य। चाहे इससे समाज

उपकार हो या अपकार। इसकी उन्हें परवा नहीं। समाज को चाहिए कि वह अपने नियंत्रण द्वारा ऐसे लोगों को सन्तान पैदा करने से वंचित रक्खे। वह उन्हीं को सन्तान पैदा करने की आज्ञा दे, जो अपने उचित समय तक ब्रह्मचारी हों तथा जिनके विकास—सृष्टि के द्वारा समाज और राष्ट्र के कल्याण की आशा हो।

ऐस बालको की रक्षा तथा उनके पालन-पोषण का भी समाज की ओर से अधिक प्रबन्ध रहना चाहिए। उनकी प्रारम्भिक अवस्था के स्वास्थ्य की भरभूर रक्षा करनी चाहिए। उन्हे सदाचार और ब्रह्मचर्य की शिक्षाएँ दिलानी चाहिए। उन्हे ऐसी परिस्थिति और वातावरण में रखने का प्रबन्ध किया जाय, जहाँ रहकर वे सदाचार को छोड़कर दुराचार न सीख सकें। उनके भीतर छिपी हुई शक्तियो का भी हमें ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। अपनी उचित और अनुचित आज्ञाओं का शिकार बनाकर एक क्रीतदास-सा न बना देना चाहिये। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक अर्ल रसल का इस सम्बन्ध मे कथन है—'यदि बालको का ही ध्यान रक्खा जाय; तो शिक्षा का उद्देश्य उन्हे स्वयं विचार करने के योग्य बनाना है, न कि उन्हें उनके शिक्षकों के विचारो का अनुकरण करना सिखाना है।' यदि हमारे हृदय में बालको के अधिकारों के लिए लेशमात्र भी आदर हो तो हमें उनको ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो उनके अन्दर वह ज्ञान और वे मानसिक आदतें उत्पन्न कर दें जिनका होना स्वातन्त्र्य विचारों की उत्पत्ति के लिए अनिवार्य है।

ऊपर हमने यह बताने की चेष्टा की है कि समाज और बालकों के जीवन का कितना गुरुतर सम्बन्ध है। हमे समाज के अन्दर बालको के अधिकारो की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिए?

बाल-विवाह

यह प्रश्न जटिल और विचार-पूर्ण है। इस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता था। पर यहाँ उसे लिखने की आवश्यकता नहीं। यहाँ तो हमारे लिये इतना बता देना ही पर्याप्त है कि समाज मे ब्रह्मचर्य के द्वारा ही सुन्दर और योग्य बालक पैदा किये

जा सकते हैं। और बालकों को ब्रह्मचारी तथा बलवान बनाना समाज का ही काम है। पर समाज अनेक कुरीतियो का शिकार है। यद्यपि हम इस समय कुछ जग गये हैं, और आँखे पसार कर चारो ओर देखने लगे हैं, किन्तु हमारे वर्ग का अधिक अश अबतक अशिक्षा के अन्धकार में पड़ा हुआ है। हम स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, हम अपने मानवी-अधिकारो के लिए उथलपुथल मचा रहे हैं, पर उस वर्ग से कुछ मतलब नही। वह समझता ही नहीं कि यह क्या चीज़ है! वह भोजन और परिश्रम के अर्थों को छोडकर ससार के किसी शब्द का अर्थ नहीं जानता। यदि जानने के नाते कुछ जानता भी है तो यही स्त्री पुरुष का सहवास, अधिक बच्चो की उत्पत्ति। दस-दस, पन्द्रह पन्द्रह बच्चे आगे-पीछे रो रहे हैं। खाने को भोजन नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं; पर फिर भी बच्चो की उत्पत्ति जारी है! भगवान ही हमारे इस वर्ग का कल्याण करे। वही उस वर्ग से गठित इस भारतीय समाज की रक्षा करे।

हम थोड़े से लोग आगे बढ़े जा रहे हैं। पर अधिक लोग पीछे पिछड़े हुए रो रहे हैं। हम थोड़े से लोग सामाजिक कुरीतियों से अपना पिण्ड छुडाकर भिखारी की भाँति आगे भागे जा रहे हैं; पर अधिक लोग उसे अपनाये हुए हैं। उससे मिलकर अपने बाल-बच्चों का विनाश कर रहे हैं। वे जानते ही नहीं कि सामाजिक कुरीतियाँ क्या वस्तु हैं? वे यह समझते ही नहीं कि हमारे परिवार को छोड़कर और किसी के ऊपर हमारे शुभाशुभ का भार पड़ सकता है। वे समझते हैं, हम ससार में कमाने और खाने के लिए ही भेजे गए हैं। यहाँ यही सबसे बढ़कर उत्तम पुण्य और धर्म है कि यदि बेटा चाहे आठ ही वर्ष का क्यो न हो, पर माता पिता उसकी बहू का दर्शन कर ले। यही नही, वे उन्हीं के द्वारा नाती का मुखड़ा देख लें! बस, वे ससार में पूरे भाग्यवान हैं। उनका जीवन सफल हो गया है। कितनी अज्ञानता की बात है! लोगों में कैसी गहरी मूर्खता भरी हुई है? जिस समाज और राष्ट्र के अधिक लोग अपने आठ आठ और दस दस वर्ष के बच्चों से

यह आशा कर रहे हैं, उस समाज और राष्ट्र का क्या कल्याण हो सकता है ? उसमें कैसे भीष्म-जैसे ब्रह्मचारी और अभिमन्यु आदि की भाँति वीर बालक उत्पन्न हो सकते हैं ? वह समाज, पाप और भ्रूण-हत्याओं का भण्डार नहीं बन जायगा तो और क्या होगा ?

लोगों का यह विचार ही आज समाज का नाश कर रहा है। इसी मूर्खतापूर्ण विचार के कारण आज देश के कोने-कोने मे बाल-विवाह की चक्की चल रही है। प्रति वर्ष सैकड़ो बालक और बालिकाएँ इसकी चक्की में पीसी जा रही हैं। यद्यपि सरकार की ओर से बाल विवाह-निषेधक कानून बन गया है, पर वह जोरों से काम में नही लाया जा रहा है। वरन् बाल-विवाह की प्रथा दिनो-दिन देश मे प्रबल होती जा रही है। कुछ लोगों का ध्यान है कि बाल-विवाह करना, भारतीय शास्त्रानुसार धर्म है। यदि यह सत्य है तो हमें ऐसे धर्म को भाड़ में झोक देना चाहिये। हम उस धर्म को लेकर क्या करें, जिससे हमारा सर्वनाश तक हो गया। जिससे हम आज पतन-सागर के किनारे पहुँच कर अपने भाग्य पर आँसू बहा रहे हैं। हम तो वह दिन देखने के लिए अधिक बेचैन और व्याकुल हो रहे हैं, जिस दिन धर्म की यह अज्ञान-तापूर्ण भावना लोगों के हृदय से काफूर हो जायगी।

कितनी मूर्खता है! कही कच्ची कली का भी उपयोग किया जाता है ? भ्रमर नादान और चेतना शून्य होने पर भी कभी अविक-सित फूल पर नहीं बैठता, किन्तु मनुष्य उससे भी गये बीते हैं। वे अपने छोटे-छोटे बालको तक का विवाह कर डालते हैं। बालक अपनी कच्ची अवस्था मे ही अपने वीर्य का विनाश करना शुरू कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके जीवन का विकास बन्द हो जाता है। उनकी शक्तियाँ झुलस जाती हैं। वे कद के ठिंगने और बल के भिखारी बन जाते हैं। उनकी चेतना नष्ट हो जाती है। उन्हे अनेकों प्रकार के रोग घेर लेते है। और यही रोग, उन्हें एक दिन संसार से भी उठा ले जाते हैं।

ऐसे बालकों से किसी का भी कोई उपकार नहीं होता। न परिवार को सुख मिलता है और न माता-पिता की आशाएँ पूरी होती हैं। माता-पिता जिस आशा का स्वप्न देखते रहते हैं, वह स्वप्न ही सिद्ध होती है। वे जन्म भर झींकते ही मर जाते हैं, पर फिर भी ऐसे लड़कों से एक सन्तान भी नही पैदा होती। और यदि कभी होती भी है तो वह प्रसूतिका-गृह मे ही इस ससार से चल बसती है। भला, अपरिपक्व और अशक्त वीर्य से भी कभी बलशाली सन्तान पैदा होती है? ऐसी सन्तान के लिए तो ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। पर ब्रह्मचर्य की नींव तो बाल-विवाह के द्वारा तोड़ दी गई है? भारतीय समाज-सुधारकों को इस प्रथा का समूल विनाश कर ब्रह्मचर्य की नींव को सुदृढ़ बनाना चाहिए। तभी समाज और राष्ट्र का कल्याण हो सकेगा। बाल-विवाह के ऊपर अपने विचारो को प्रकट करते समय स्वामी दयानंद ने कहा—'जिस देश में ब्रह्मचर्य-विद्या रहित बाल्यावस्था में विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य-विद्या के ग्रहण-पूर्वक विवाह के सुधार से सुधार और बिगाड़ से बिगाड़ हो सकता है।'

वृद्ध-विवाह

बाल विवाह की भाँति वृद्ध-विवाह का भी भयानक रोग समाज में फैला हुआ है। इस रोग से भी समाज जर्जर और क्षीण-प्राय हो रहा है। प्रति वर्ष सैकड़ो दीन हीन अबोधी बालिकाएँ, इस प्रथा के द्वारा पाप की भयङ्कर अग्नि मे झोंकी जाती हैं। मृत्यु के मुख में जाने वाले कामी बूढ़े, धन और शक्ति के मद में उन बालिकाओं को अपना शिकार बना लेते हैं। वे उनके ऊपर असमय काल ही में काम के प्रहारो की वर्षा शुरू कर देते हैं। जिस प्रकार तुषार के पड़ने से कलियाँ मुर्झा जाती हैं, उसी प्रकार ये अबोध बालिकाएँ भी जीवन से रहित हो जाती हैं। उनके विकास की गति बन्द हो जाती है। उनके सौन्दर्य की दुनिया उजड़ जाती है। पर क्या इन बालिकाओं को पाप की अग्नि में झोंकने

वाले बूढ़े कुशलपूर्वक रहते हैं ? नहीं, उनके जीवन में भी एक प्रकार का जहर घुस जाता है । प्राचीन शास्त्रकारों का कथन है—

'वृद्धस्य तरुणी विषम् ।'

वृद्ध पुरुष के लिए तरुणी विष के समान होती हैं । सचमुच आग और तिनके का सामना रहता है । वृद्धावस्था में मानवशक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं । पर वह इसका ख्याल नहीं करता और अपने सुखों के लिए एक निरी बालिका का हाथ पकड़ लेता है । इसका परिणाम क्या होता है ? वही जो होना चाहिए । बूढ़ा आदमी थोड़े ही दिनों के बाद इस संसार से चल बसता है । और फिर उस बालिका के द्वारा समाज मे पापो की सृष्टि होने लगती है । जिस समाज मे अस्सी-अस्सी वर्ष के वृद्ध अपनी काम-वासना को नहीं सँभाल सकते, उस समाज मे पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष की बालिकाओं से ब्रह्मचर्य की आशा रखना अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

आज इस वृद्ध-विवाह के द्वारा ही समाज में भयंकर अनाचार फैला हुआ है । जहाँ ही देखिए, वहीं पाप मुँह बाये हुए खड़ा है । विधवाओ की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है । वेश्याएँ भी अधिक संख्या में उत्पन्न होती जा रही हैं । छोटे-छोटे नवजात बालक चिथड़ों मे लपेटे हुए नदी और नालों मे पाये जा रहे हैं । यह सब क्या है ? इसी वृद्ध विवाह का कुफल ! यदि देश मे यह अनाचार फैलता ही रहा, यदि इसकी बढ़ती हुई प्रगति को बन्द न किया गया तो देश का महा-विनाश हो जायगा । इसमे एक भी ऐसा बालक देखने को न मिलेगा जो मेधावी और साहसी हो । चारो ओर मुर्दा-दिली की बस्ती-सी बस जायगी । एक बार इसी वृद्ध-विवाह के शोचनीय परिणामो पर दुःख प्रकट करते हुए स्वामी श्रद्धानन्दजी ने कहा था—'वृद्ध-विवाह से विधवाओ की संख्या बढ़ रही है । इनके कारण समाज की बड़ी अमर्यादा हो रही है, पर द्विजाति लोग इनका उद्धार करने से डरते हैं । इसलिए

हमारा यही अनुरोध है कि ४० वर्ष की अवस्था के बाद किसी पुरुष को विवाह न होने देना चाहिए।'

वृद्ध-विवाह से अनेकों हानियाँ होती हैं। समाज और राष्ट्र बुरी भावना का घर-सा बन जाता है। दुनिया के किसी भी देश में वृद्ध-विवाह की इस कलुषित प्रथा का उतना प्रचार नहीं, जितना हमारे देश में है। वासना ही यहाँ के अधिकांश मनुष्यों का जीवन है। गुलामी की भावना के कारण उन्हे अपना अस्तित्व भूल गया है। वे बुढापा की अवस्था में भी दिन-रात बोतलें ढुलकाने और सुन्दरियों की लालसा किया करते हैं। ऐसे पुरुष समाज और अपने परिवार के लिए भी विषैले कीड़े हैं। इन कीड़ो का, जितना ही जल्द नाश हो जाय, अच्छा है। यहाँ हम वृद्ध-विवाह से होनेवाली कुछ हानियो का उल्लेख कर रहे हैं—

१. वृद्ध-विवाह से देश में विधवाओ की वृद्धि होती है।
२. इससे राष्ट्र के अन्दर, वेश्याओ की सख्या बढ़ती है।
३. पाप और अनाचार को बढ़ने मे सहायता मिलती है।
४ व्यभिचार का बाजार गर्म होता है।
५. परिवार का समूल विनाश हो जाता है।
६ सन्तानें कमजोर, विलासी और दुर्गुणो से भरी हुई होती है।
७. आत्म-हत्या तथा भ्रूण-हत्या प्रतिदिन के कार्य हो जाती हैं।
८. समाज और राष्ट्र निर्बल हो जाता है।
९. देश मे ब्रह्मचारियो की कमी हो जाती है।
१०. महामारी, हैजा आदि रोगो का प्रसार होता है।

हमारे समाज में, युवकों के सुधारने की शक्ति नही। इसमें आज दिन ऐसे-ऐसे कानून और विधान प्रचलित हैं, जिनसे युवकों की शक्तियो का निर्माण नही, वरन् उनका विनाश होता है। इनके झूठे और विडम्बना पूर्ण विधानो से ही युवको में ऐसी कुधारणाओ का समावेश होता है, जिनसे उनकी जीवन शक्तियो का नाश होता है। युवक स्वभावतः उच्छृ-

वेश्या-नृत्य

खल प्रकृति के होते हैं। उनकी इन्द्रियाँ चारों ओर दौड़ती-सी रहती हैं। मन और हृदय उन्माद-सागर में लहराता-सा रहता है। अतः उस समय आवश्यकता होती है युवकों के देख भाल की। उनके चचल मन को एकाग्र रखने के लिए इसकी जरूरत होती है कि उनके पास ऐसे ही साहित्य तथा ऐसे ही साधन रहें, जिनसे उनका मन चचल न हो। पर जब माता-पिता स्वयं उनके सामने ऐसे साधन लाकर उपस्थित कर देते है जिन्हे देखकर उनके असयमित मन का बॉध टूट जाता है और वे उसकी प्राप्ति में अपना सर्वस्व तक खो डालने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो इसमें किसका दोष? समाज, माता पिता अथवा युवकों का?

यह सभी जानते हैं कि समाज की गोद वेश्याओ से भरी हुई है। और यह भी किसी से छिपा नहीं कि इन वेश्याओं से समाज की कितनी गहरी क्षति हो रही है। पर समाज यदि इनका समूल विनाश करना चाहे तो नही कर सकता। पहले तो उसमे इतनी शक्ति नही है, और दूसरे यह बात कुछ असम्भव-सी है। हाँ, वह इतना अवश्य कर सकता है कि इनकी बढ़ती हुई सख्या मे कमी पड़ जायगी और इनका स्वेच्छाचार कुछ कम हो जायगा। वेश्याओ के सुधार का यहाँ प्रश्न नही है। यहॉ तो प्रश्न है, युवकों के सुधार का। युवक जहाँ अन्यान्य कुरीतियो से नष्ट हो रहे हैं, वहाँ उनके विनाश का कारण ये वेश्याएँ भी हैं। वेश्याओ का काम खुले आम संसार मे पाप बढ़ाना है। वे सारे संसार को चैलेंज देकर मानवी-शक्तियो का विनाश करती हैं। उनके ऊपर किसी सरकार का नियन्त्रण नहीं। उनकी इस अमानुषिकताके लिए समाज की ओर से कोई विधान नहीं। वे स्वतन्त्रता-पूर्वक पाप के मार्ग पर आगे बढ़ती जा रही हैं। सैकड़ों नवयुवको को, लाखो प्रौढ़ मनुष्यो को भी उसी ओर ढकेले लिये जा रही हैं। अफसोस! फिर भी हम उन्हे अपने समाज में स्थान देते हैं और हम उन्हें आदर-सम्मान से बुलाकर अपने बीच उनका नृत्य कराते हैं। इसका यह तात्पर्य हुआ,

कि हम भी मनुष्यता का खून करते है। हम भी राक्षसी-वृत्तियो के प्रचार मे सहायक बनते हैं।

वेश्याओं का यही व्यापार है। इसी कमाई पर उनके जीवन का निर्वाह होता है। वे पाप का ही पैसा खातीं और उसी पैसे से अपना शृंगार करती हैं। ऐसा कोई भी भारतीय घर नहीं, जिसमें विवाह-शादी के अवसर पर वेश्या नृत्य की निन्दनीय प्रथा न हो। हम बड़े उत्साह और हर्ष से ऐसे अवसरों पर निमत्रण देते हैं। इसका परिणाम क्या होता है? सैकड़ो युवक केवल एक दिन-रात ही मे उनके विलासी नयनो के शिकार बन जाते है और उसके पीछे कुछ दिनो मे अपना सम्पूर्ण तक नाश कर डालते हैं। एक स्थान की बात नही, यह आज सारे देश में होता है। सारे देश मे पाप की यही लहर चल रही है। मैं स्वय ऐसे अनेको को जानता हूँ, जो अपने माता-पिता की इस थोड़ी सी भूल के कारण ही अपना जीवन वेश्याओ के चरणो पर लुटा रहे हैं। एक सभ्य घराने के युवक की कहानी इस प्रकार है। कहानी दया-नीय है। इससे नवजवानो को शिक्षा भी मिल सकती है—

'वे युवक हैं। घर के साधारण स्थिति के मनुष्य हैं। शिक्षित हैं। माता पिता भाई-बन्धु भी है, पर किसी बारात मे वेश्या के प्रेम नें उनके हृदय मे घर कर लिया और वे उसके गुलाम बन गये। घर की आर्थिक अवस्था अच्छी न होने से वे द्यूत आदि दुर्गुणो के शिकार हो गये। यही नहीं, माता-पिता के रक्खे हुए रुपयो को भी धीरे-धीरे गायब करने लगे। माता-पिता को उनकी इस प्रवृत्ति का पता चला। उन्होने उनके सुधार के लिए उनका विवाह कर दिया। घर मे स्त्री भी आ गई। पर उनका सुधार न हुआ। वे लोगो से रुपये कर्ज लेकर तथा अपनी नव-विवाहिता स्त्री के आभूषणो द्वारा उस राक्षसी की उदर-पूर्ति करने लगे। सुनता हूँ, इस समय उनके माता-पिता उन्ही के द्वारा किये हुये ऋण से लदे हुए हैं और स्त्री दुःखी तथा उदासीन है। वह

रो-रोकर उन लोगों से कहा करती है कि तुम लोगों ने जान-बूझकर मुझे इस कुएँ मे क्यो ढकेला ।'

यह एक साधारण-सी कहानी है । पर इसका फल स्पष्ट है । इस भाँति अनेको घरो मे पाप का यह अभिनय हो रहा है । अनेको चहार दीवारियो के अन्दर भोली और अबोध बालिकाएँ सताई जा रही हैं । उनके पति बुरी तरह से वेश्याओं के सिकजे मे फँसे हुए हैं । माता-पिता भी कान मे तेल डाले हुए हैं । ऐसे युवको से समाज का क्या भला हो सकता है । उनका पुरुषत्व वेश्या की पाप ज्वाला मे भस्म हो रहा है । भर्तृहरि ने लिखा है—

वेश्यासौमदन-ज्वाला, रूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते, यौवनानि धनानि च ॥

'वेश्यागमन, वेश्यारूपी धन से सजाई हुई कामाग्नि की ज्वाला है । कामी पुरुष इसमे अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं ।'

भर्तृहरिजी का यह कथन बिलकुल ठीक है । अतः समाज के नियन्त्रण द्वारा अपनी युवक शक्ति को वेश्याओं की पापाग्नि मे जलने से रोकना चाहिए । वेश्या-नृत्य की प्रथा उठाने से यह बहुत कुछ अंशो मे कम हो सकता है ।

नवाँ अध्याय

वीर्य-रक्षा के नियम

अब तो यह भली-भाँति विदित हो गया होगा कि मानव शरीर मे वीर्य ही सर्वप्रधान वस्तु है। वीर्य ही शरीर का स्वास्थ्य और वीर्य ही शरीर का सौंदर्य है। वीर्य ही शक्ति और प्रताप है। वीर्य ही साहस और चेतना है। प्राचीन शास्त्र-कारो के मतानुसार वीर्य-रक्षा ही तपस्याओं में अत्यन्त श्रेष्ठ तपस्या है। इससे मनुष्य को मुक्ति मिलती है। जब वीर्य की इतनी महिमा है, जब उसका प्रचण्ड प्रताप इस भाँति मानव-शरीर मे फैला हुआ है, तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी रक्षा के नियमो से पूर्णरूप से परिचित रहें। इसी उद्देश्य से यहाँ हम कुछ नियमो का उल्लेख कर रहे हैं। इन नियमो का पालन कर कोई भी मनुष्य ब्रह्मचारी बनकर संसार में अपनी मानव-शक्तियों की रक्षा कर सकता है।

विचार मन की एक अद्भुत शक्ति है। मनुष्य इसी शक्ति के संकेत पर सदैव नाचा करता है। जैसा उसके मन में विचार पैदा होता है, वैसा ही वह काम भी करता है। संसार में ऐसा-

पवित्र-विचार

कोई भी मनुष्य नहीं, जिसके हृदय में विचार न उठते हो। ससार का कोई काम विना विचार के सम्पादित कभी नही होता। प्रत्येक काम में इसी विचार का आश्रय लेना पड़ता है। अतः इस बात की आवश्यकता होती है कि मन मे उठनेवाले विचार उन्नत और कल्याण हों। यदि विचार उत्तम होगे, यदि उनमे कल्याण-कारी शक्तियाँ रहेगी तो जीवन मे सुख प्राप्त होगा। सारी बाधाएँ दूर हो जावेंगी। संसार में लोगो की ओर से सहानुभूति

मिलेगी। और जीवन में वह सन्तोष प्राप्त होगा, जिसकी बड़े-बड़े लोग कामना किया करते हैं।

पवित्र विचार उन्नति के साधन हैं। जिसके हृदय मे सदैव पवित्र विचार उठते रहते हैं, वह कभी पापी और व्यभिचारी नहीं होता। उसका मन अधर्म की भावनाओं पर कभी भी विश्वास नहीं कर सकता। इन्द्रियाँ उसके वश मे रहेंगी। वह ब्रह्मचर्य व्रत-द्वारा अपने शरीर की शक्तियों की भली प्रकार रक्षा कर सकता है। अमेरिका के एक शरीर-वैज्ञानिक का कथन है कि मनुष्य का विचार ही उसका साथी है। वही उसे पापी बनाता है और वही उसे धर्मात्मा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने इस साथी से बहुत कुछ सोच-समझ कर मैत्री स्थापित करे। सचमुच, विचार मनुष्य के साथी होते हैं। इसीलिए तो वह उनके संकेतों पर घूमा करता है।

ब्रह्मचर्य-व्रत के लिए पवित्र विचारो की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ किसी वस्तु या दृश्य को देखकर विचलित हो जाती हैं और पाप की ओर झुक पड़ती हैं। पर यदि हृदय मे पवित्र विचार रहेंगे तो ऐसा कभी नहीं होगा। पहले तो मनुष्य पाप की ओर जायगा ही नहीं; यदि जाने का प्रयत्न भी करेगा तो नहीं जाने पावेगा। उसके पवित्र विचार उसे रोक देंगे और वह लज्जित होकर अपने उस निन्दनीय पथ को छोड देगा। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह पवित्र विचारवाला बने। पवित्र विचार ही ससार में मोक्ष और मुक्ति के साधन है।

ससार मे माता का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। माता हमारी जननी है। हम उनके गर्भ से पैदा होते हैं। उसके स्तनों को पीकर बड़े होते हैं। उसमें हमारी भक्ति है। उसे हम देवी

समभाव मातृ-भाव और

कल्याणी की भाँति पवित्र मानते हैं। दुनिया में हम सबको अविश्वास की दृष्टि से देख सकते हैं, पर माता सदैव हमारे विश्वास की स्थायी वस्तु है। हमारे में

इतनी शक्ति नही कि हम उसे अविश्वास की दृष्टि से देख सकें। हमारे में इतना बल नहीं कि हम उसे सन्देह की दृष्टि से देख सकें। उसकी शक्ति और उसका बल ससार में सबसे वड़ा बल है। ससार की सम्पूर्ण शक्तियों को उसके सामने झुकना पड़ता है। न तो उसके समान कोई पवित्र है और न कोई सत्य। ससार का प्रत्येक प्राणी अपनी माता को पवित्रता की दृष्टि से देखता है। पर ब्रह्मचारी को ससार की प्रत्येक स्त्री को माता की भाँति ही पवित्र समझना चाहिए तभी वह ससार में पूरा ब्रह्मचारी बन सकेगा। तभी उसके ब्रह्मचर्य की शक्तियाँ ससार में टिकी रह सकेंगी और तभी वह उन कार्यों को पूरा भी कर सकेगा, जिनकी एक सत्यनिष्ठ ब्रह्मचारी से आशा की जाती है।

एक श्लोक का पद है—'मातृवत् परदारेषु।' अर्थात् दूसरी स्त्रियो को भी माता के समान समझो। किसी स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखो। किसी के रूप और लावण्य को अपने मन मे न टिकने दो। यदि कभी ऐसा हो तो समझ लो, यह भी तुम्हारी माता है। इसमें भी माता की शक्तियाँ छिपी हुई हैं। बस, हृदय से पाप की वासना मिट जायगी और हृदय दर्पण की भाँति स्वच्छ हो जायगा। माता नाम ही पवित्र शक्ति है। यह शक्ति बडे-बड़े पापो का विध्वंस कर डालती है। यदि तुम किसी में अपने हार्दिक विश्वासो को स्थिर करना चाहते हो, तो तुरत उसे माता मान लो। बस, इन दो अक्षरों से ही तुम्हारा हृदय पवित्रता से भर जायगा। तुम्हारे मन का सारा सन्देह दूर हट जायगा।

पाप का बीजारोपण अधिकतर आँखो के द्वारा ही होता है। आँखें ही सबसे पहले पाप की ओर प्रवृत्त होती हैं। इसलिए किसी स्त्री से बातें करते समय तुम अपनी आँखों को नीची रक्खो। इन्हें किसी तरह बहकने न दो। स्त्रियो के समाज में अधिक न जाओ। यदि जाओ भी तो इस भाव को लेकर जाओ कि वे सब तुम्हारी

माताएँ हैं। किसी खुले अंग को भी न देखो। और यदि सहसा देख भी लो तो समझो ये तुम्हारी माता के अंग हैं। इससे तुम्हारे चित्त की वासना हट जायगी और तुम पाप मे गिरने से बच जावोगे। स्वामी दयानन्द जी के मातृ-भाव के सम्बन्ध मे इसी प्रकार की एक छोटी-सी घटना पाई जाती है। एक बार एक ब्रह्मचारिणी स्त्री स्वामी दयानन्द जी के पास गई और जाकर कहने लगी—'मै आबाल ब्रह्मचारिणी हूँ और आप एक आदर्श ब्रह्मचारी हैं। अतः यदि आप मुझसे विवाह कर लें तो मेरे गर्भ से आप ही ऐसा लोकोपकारी और दिग्विजयी पुत्र उत्पन्न होगा।' इस पर स्वामी जी ने उसे उत्तर दिया—'हे माता! तुम मुझी को क्यों नहीं अपना पुत्र मान लेती!' स्त्री लज्जित होकर लौट गई। यह है, मातृ-भाव! प्रत्येक नवयुवक को स्वामी जी की इस जीवन-घटना से शिक्षा लेनी चाहिए। यही वीर्य-रक्षा का मूलमंत्र है।

रहन-सहन

संसार विलास का घर है। यहाँ ऐसी अनेक शृंगार की वस्तुएँ भरी पड़ी हैं, जो हमारी आँखो के सामने आकर हमें आश्चर्य में डाल देती हैं। इन्हीं वस्तुओं से हमारा मन पतित भी होता है। शृगारमयी वस्तुएँ स्वभावतः कामोत्तेजक हुआ करती है। जब हम इन वस्तुओं का उपयोग करते हैं तो हमारे हृदय में एक विचित्र तूफान और बवण्डर-सा आने लगता है। और हम उस तूफान तथा बवण्डर को शान्त करने के लिए पाप की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। टालस्टाय ने एक स्थान पर लिखा है कि संसार मे वही आदमी सब से बड़ा भाग्यवान है, जिसके मन की प्रवृत्तियों को संसार की शृगारिक वस्तुएँ अपनी ओर खींचने में असमर्थ-सी रहती हैं।

वास्तव में वही मनुष्य धन्य है, जो इनसे अपना पिण्ड छुड़ा कर अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर सका हो। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए रहन-सहन की पवित्रता और सादगी की विशेष आवश्यकता हुआ करती है। संसार में जितने बड़े-बड़े मनुष्य हुए है, वे सभी साधारण

चाल-ढाल वाले थे। सादी रहन-सहन से मनुष्य के शरीर में एक प्रकार का आत्मबल-सा पैदा होता है। महात्मा गाँधी आज हमारी आँखों के सामने हैं। उनका जीवन कितना सादा है। उनकी रहन-सहन कितनी पवित्रता से भरी हुई है। शरीर पर एक कुर्त्ता भी नहीं रहता, पर उस महात्मा के शरीर में कितनी शक्तियाँ समाई हुई हैं। क्या यह सत्य नहीं कि उन्होने सांसारिक शक्तियो पर विजय प्राप्त कर ली है। पर यह किसका परिणाम है? ब्रह्मचर्य का। सादी रहन-सहन द्वारा उन्होंने अपने ब्रह्मचय की दृढ़तापूर्वक रक्षा की है। अतः यदि तुम भी दुनिया मे महान् पुरुष बनना चाहते हो, तो ब्रह्मचर्य व्रत-पालन करो। ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन के लिए शृगारमयी वस्तुओ से दूर रहो। बालो में सुगन्धित तेल न लगाओ। इसका व्यवहार न करो। पान न खाओ। रंगीन और प्रकृति बिगाड़ने वाले वस्त्रो से दूर रहो। इन वस्तुओ से मन मे बुरी भावनाएँ पैदा होती हैं और यही तुम्हे कुपथ पर ले जाकर तुम्हारा सर्वनाश करती हैं।

प्रातःकाल उठना

प्रातःकाल उठने से अनेक लाभ होते हैं। एक अनुभवी मनुष्य का कथन है कि प्रातःकाल वे हवाएँ चला करती है जिनसे मनुष्य की जीवन-शक्तियो को आरोग्य-लाभ और चेतना को विकसित होने मे सहायता मिलती है। वास्तव मे यह कथन ठीक है। प्रायः यह देखा गया है कि जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर स्वच्छन्द वायु का सेवन किया करते हैं, वे अधिक स्वस्थ और विचारशील होते हैं। उनके जीवन को आलस्य और उदासीनता के भाव तो छू तक नही पाते। उनका शरीर सदैव ताजा बना रहता है। विचार-शक्तियाँ भी हिलोरें मारती रहती हैं। अमेरिका के एक वैज्ञानिक डाक्टर ने एक स्थान पर लिखा है कि यदि तुम स्वस्थ होना चाहते हो तो प्रातःकाल उठने के अभ्यासी बनो। केवल एक इसी अभ्यास से शरीर के बड़े-बड़े रोगो तक का नाश हो जाता है।

हमारे शास्त्रों मे भी इसकी गुरु महिमा लिखी हुई है। मनुस्मृति में लिखा हुआ है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत् धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशाश्च, तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥

'अर्थात् ब्राह्म-मूहूर्त्त मे उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। अपने शरीर के दुःखो और उनके मूल कारणो पर विचार करना चाहिए। और वेदो के तत्त्वो का अध्ययन करना चाहिए।' मनुस्मृति मे ऐसा क्यो लिखा गया है? इसलिए कि ब्राह्ममुहूर्त से बढ़-कर और कोई पवित्र समय नहीं है। इस काल से बढ़कर और कोई आरोग्यवर्द्धक काल नही। प्रकृति का कोना-कोना पवित्रता से भरा रहता है। पत्ते-पत्ते से आरोग्यवर्द्धक हवा निकलती रहती है। इस वायु से मनुष्य के मस्तिष्क का विकास होता है। आलस्य दूर भागता है। हृदय मे सदाचार के उत्तम विचार उत्पन्न होते हैं। वीर्य-रक्षा में सहा-यता मिलती है। अतएव प्रत्येक ब्रह्मचारी और सदाचारी मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रातःकाल उठने का अभ्यासी बने।

उषः की लाली छिटककर सारे संसार के अन्धकार को दूर कर देती है। पक्षियाँ चहचहाने लगती है। भ्रमर गुनगुनाने लगते हैं। और प्रकृति की गोद में खेलते हुए फूल विहँस उठते है। एक ओर से दूसरी ओर जीवन की बहार दौड़ जाती है। जिस प्रकार प्रकृति के ऊपर इस उषा का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार मानव-शरीर भी इसके प्रभावो से वंचित नही रहने पाता। भीतर-ही-भीतर उसका प्रभाव इस पर भी पडता है। जो लोग उषः की मर्यादा को समझते हैं और यह जानते है कि उषः की लाली जिस प्रकार प्रकृति मे एक नई जान डालती है, उसी प्रकार मानव-शरीर में भी वह अपना वही जीवन डालती है, वे कभी उषा की लाली से लाभ उठाने से वंचित नहीं रहते। यही कारण है कि

उषःपान

उनका शरीर भी फूलो की भाँति ताजा और हँसता हुआ रहता है। पर जो इसको नहीं जानते और उषा के कई घण्टे पश्चात् भी अपनी चारपाई पर पड़े रहते हैं, उनका जीवन दुःखी और भार स्वरूप हो जाता है। वे अनेक रोगो के शिकार हो जाते हैं। आयुर्वेद का कथन है—

सवितुः समुदयकाले, प्रसृती सलिलस्यपिवेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो, जीवेत्वत्सरशतप्रम ।

जो मनुष्य सूर्य के उदय होने से कुछ पहले आठ अँजुली जल पीता है, वह रोग और वृद्धता से रहित होकर सौ वर्षों से भी अधिक जीवित रहता है। यह है, उष.पान और उसका महत्व ! इससे मानव-शरीर का विकास होता है। शरीर के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। वीर्य-धारण में सहायता मिलती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को नियम-पूर्वक उषःपान करना चाहिए। इससे होनेवाले कुछ लाभ इस प्रकार हैं—

१. कामेन्द्रिय शांत होती है।
२. वीर्य-सम्बन्धी रोगो का विनाश होता है।
३. शरीर मे गर्मी की मात्रा नही बढ़ती।
४ बुद्धि और शक्ति का प्रसार होता है।
५. अजीर्ण और स्वप्नदोष इत्यादि रोग नहीं होते।

शरीर का सचालन एक नियम-गति से हुआ करता है। शरीर के प्रत्येक कामो के लिए प्रकृति की ओर से समय निर्द्धारित है। जिस प्रकार भोजन का समय है, उसी प्रकार मल-मूत्र के त्याग का भी समय है। जब हम प्रकृति के इन नियमों का उल्लंघन करते हैं, तभी हमारे शरीर मे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तभी हमे अनेक बार मल-मूत्र त्याग करने की आवश्यकता पड़ती है और तभी हम अजीर्ण आदि जैसे भयानक रोगों के शिकार बन जाते हैं। अतः स्वास्थ्य की सबलता को

मल मूत्रत्याग

स्थिर रखने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकृति के इन नियमों के गुलाम बनें।

प्रतिदिन सूर्योदय से पहिले हमे अपनी चारपाई छोड़ देनी चाहिए और सूर्योदय से पहिले ही मल-मूत्र का त्याग कर देना चाहिए। दिन मे केवल दो ही बार शौच जाना चाहिए—सबेरे और शाम। मनुस्मृति में लिखा है—

> मूत्रोच्चारसमुत्सर्गः दिवाकुर्यादुत्तरमुखः।
> दक्षिणाभिमुखोरात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा।

दिन में उत्तर मुख करके तथा रात में दक्षिण मुख करके हमे मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार के प्रमाण वैद्यक शास्त्र में भी पाये जाते हैं। वैद्यक-शास्त्र के मतानुसार शौच खुले मैदान ही में जाना चाहिए। इससे बस्ती मे गन्दगी नहीं फैलती और वायु-सेवन का अपूर्व लाभ होता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में भारतीय ऋषि-मुनि इसी नियम का पालन किया करते थे। वे कभी बन्द कमरे मे शौच नहीं जाते थे। पर आजकल तो लोग घर में खाते और घर में ही शौच जाते हैं।

बहुत लोग बड़े आलसी होते हैं। उन्हे मल-मूत्र त्याग की आवश्यकता मालूम भी पड़ती है, पर वे मल-मूत्र का ठीक समय से त्याग नहीं करते। इससे उनके शरीर मे अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। वीर्य कमजोर होकर स्वप्नदोष में बाहर निकल पड़ता है। मन्दाग्नि हो जाती है। अपान वायु बिगड़कर मैले को ऊपर की ओर चढ़ाने लगती है। यह मैल जठराग्नि मे पड़कर पचता है और सारे शरीर के रक्त को दूषित बना देता है। वैद्यक मे लिखा है—'सर्वेषामेवरोगाणां निदाने कुपिता मलः।' अर्थात् संसार के समस्त रोग केवल मल-मूत्र के बिगड़ने से ही पैदा होते हैं। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को मल-मूत्र के त्याग में सावधानी रखनी चाहिए। इसके

लिऐ एक निश्चित समय होना चाहिए। उस समय शौच जाना आवश्यक है। यदि इसमे भूल होगी तो स्वास्थ्य का विनाश हो जायगा। सिर मे भयङ्कर दर्द उत्पन्न होने लगेगा। आँखों की ज्योति मन्द हो जायगी। पाचन-शक्ति नष्ट हो जायगी और पेट के भीतर अनेक भीषण रोगो की नीव पड़ जायगी। फिर न तो हम ब्रह्मचारी हो सकेंगे और न अपने स्वास्थ्य को ही सबल बना सकेंगे। उस समय हमारे सामने केवल एक ही प्रश्न रहेगा कि हाय भगवान! अब क्या करें? किन्तु भगवान् का इसमे क्या अपराध! कुल्हाड़ी तो हमने अपने हाथो, अपने ही पैरों मे मारी है। फिर उसका कुफल कौन भोगेगा? कौन उसकी पीड़ा को बर्दाश्त करेगा? भगवान् ने तो हमें यह कह नही दिया था कि तुम भोजन किये जाओ और शौच न जाओ। प्रकृति के नियमो पर आक्रमण कर अपना विनाश करो! यह तो हमारा कर्तव्य था। अब हमें ही उसका फल भोगना पड़ेगा। अतः प्रत्येक स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य-प्रेमी मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने मल-मूत्र का त्याग ठीक तथा नियमित समय से करे।

शरीर के सम्पूर्ण रोग पेट से ही उत्पन्न होते हैं। और पेट मे रोग तभी उत्पन्न होता है, जब मल-मूत्र की प्राकृतिक क्रिया बिगड़ जाती है। इसीसे मनुष्य का ब्रह्मचर्य-व्रत भग होता है और वह अस्वस्थ बनकर संसार में भार-स्वरूप बन जाता है। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को अपने पेट की सफाई मे तन्मय रहना चाहिए। यहाँ हम निम्नलिखित कुछ ऐसे नियमो का उल्लेख कर रहे हैं, जिनसे सहज ही मे पेट की सफाई की जा सकती है—

पेट की सफाई

१. सूक्ष्म और हलका भोजन करो। इससे न तो उदर में विकार उत्पन्न होगा और न अजीर्ण होने से पाचन-शक्ति ही कम होगी। चित्त प्रसन्न और स्वस्थ रहेगा। किया हुआ भोजन भली-भाँति पच

सकेगा। शरीर की रक्त-नाड़ियाँ ठीक रहेगी। खून का चढ़ाव-उतार अपने नियमित गति से होता रहेगा।

२. कब्ज का कारण अधिक भोजन है। अतः जब कभी उदर में कब्ज की शिकायत हो तो सब से पहिले भोजन को कम कर दो। कोई ऐसी वस्तु न खाओ, जिससे शरीर मे विकार की वृद्धि हो। कब्ज होने पर प्रातःकाल नमक मिलाकर पानी को गर्म करके पी डालो। इससे दस्त होगे और पेट साफ हो जायगा। पर, कब्ज की शिकायत को दूर करने का सब से उत्तम साधन भोजन की न्यूनता है।

३. सवेरे नियमित रूप से सूर्योदय के पहिले आठ घूँट ठंडा जल पीओ। इससे कभी भी कब्ज न होगा और शरीर भी स्वस्थ जान पड़ेगा।

४. दिन में दो-तीन बार अपने पेट को इधर-से-उधर हिलाओ। इससे भोजन पच जायगा और पैदा होने वाले विकार नष्ट हो जायँगे।

५. प्रतिदिन कुछ न कुछ परिश्रम अवश्य करो। यदि परिश्रम न करोगे तो भोजन न पचेगा और कब्ज की शिकायत हो जायगी। कब्ज वीर्य-नाश का एक कारण है। अतः ब्रह्मचारियो को इससे बचना चाहिए।

गुप्तेन्द्रियों की स्वच्छता

गुप्तेन्द्रियो की स्वच्छता अत्यन्त आवश्यक है। इससे मन के विकार दूर होते हैं। शरीर मे एक प्रकार की शक्ति-सी मालूम होती है। और दाद, खुजली आदि भयङ्कर रोग भी नहीं होने पाते। कारण यदि इन इन्द्रियो मे मल रह जाता है तो वही इन रोगो की जड़ बन जाता है। अतः हम जिस भाँति प्रतिदिन अन्य अङ्ग-प्रत्यङ्गो की सफाई करते हैं, उसी प्रकार हमे अपनी शरीर के गुप्तेन्द्रियो की भी प्रतिदिन सफाई करनी चाहिए।

गुप्तेन्द्रियो से तात्पर्य गुदा और मूत्रेन्द्रिय से है। शौच के

समय गुप्त द्वार को अच्छी तरह धो लेना चाहिए। इससे मल साफ हो जाता है और वीर्य में शीतलता आती है। कारण वीर्य-वाहिनी नाड़ी गुदा द्वार से मिली हुई है। इसी समय मूत्रेन्द्रिय को भी भली-भाँति साफ कर लेना चाहिए, पर मूत्रेन्द्रिय को अधिक मल कर न धोवे। इससे उसमे उत्तेजना हो जाती है और वीर्य गिर जाता है। मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग पर शीतल पानी की धार छोड़नी चाहिए। मूत्रेन्द्रिय से शरीर की सारी नसें मिली रहती हैं। अतः इसे ठंडे पानी से शीतल करना समस्त शरीर के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है।

ब्रह्मचर्य-पालन की यह सबसे बड़ी उत्तम रीति है। जिस समय शिश्न में उत्तेजना पैदा हो और मन मे पाप की वासनाएँ अपना प्रभाव जमाने लगें, उस समय यदि शिश्न के अग्रभाग पर शीतल पानी की धार छोड़ दी जाय, तो काम-वासना अपने आप शान्त हो जायगी। मन का डावाँडोल मिट जायगा और शिश्न शिथिल होकर गिर जायगा। प्रत्येक ब्रह्मचारी को इस रीति का अवलम्बन करना चाहिए।

हमारे देश मे पहले एक प्रथा थी। लोग पेशाब करने के समय लोटे या गिलाश में जल लेकर पेशाब करने जाया करते थे। और पेशाब करने के बाद जल के धार को शिश्न पर छोड़कर उसे धो लिया करते थे। इस समय भी बहुत से लोग ऐसा किया करते है। धर्मशास्त्रो मे इसका उल्लेख भी है। इससे शरीर पवित्र रहता है और शिश्न की उत्तेजना शान्त रहती है। मन मे बुरे विचार नहीं उत्पन्न होते। सदाचार की जड़ सुदृढ़ होती है। पर आज इस प्रथा का विनाश-सा हो चला है। अब लोग न तो अपने गुप्तेन्द्रियो की स्वच्छता पर ध्यान देते है और न उसका उचित उपयोग करते हैं। यही कारण है कि इस समय रोग और व्यभिचार का बाजार गर्म है। ब्रह्मचर्य का नाम तक देखने को नहीं मिलता। भगवान् ही अज्ञान में डूबे हुए इस देश की रक्षा करें!

ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध इन्द्रियों से है और इन्द्रियों का सम्बन्ध शरीर से है। यदि शरीर पवित्र और स्वस्थ रहेगा तो इन्द्रियाँ भी पवित्र ही रहेंगी। और यदि शरीर पवित्र तथा स्वच्छ न होकर रोगी और गन्दा रहा तो इन्द्रियाँ कभी भी पवित्र न हो सकेगीं। गन्दा आदमी आलसी होता है। उसके शरीर में अनेक रोग होते हैं। फिर वह ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है? कैसे अपनी वीर्य-शक्तियों को रोककर अपने को बलवान बना सकता है। ब्रह्मचारी बनने के लिए शरीर की पवित्रता की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः मन से पवित्र होने के साथ-ही-साथ शरीर से भी पवित्र बनो।

घर्षण-स्नान

जिस भाँति हम नाक और मुँह से स्वाँस लिया करते हैं, उसी तरह हमारा शरीर भी प्रतिदिन स्वाँस लेता रहता है। हमारे शरीर में अनेकों रोम-छिद्र हैं। शरीर इन्हीं रोम-छिद्रों के द्वारा साँस लिया करता है। जब शरीर के छिद्र बन्द हो जाते हैं, उनके मुँह पर मैल जम जाता है, तब शरीर रोगी और अस्वस्थ-सा बन जाता है। इन मलों को दूर करने के लिए प्रतिदिन घर्षण स्नान की आवश्यकता होती है। घर्षण स्नान से रोम-छिद्रों पर जमा हुआ मल दूर हो जाता है। शरीर मे शुद्ध वायु का प्रवेश होता है। मनुष्य तेजस्वी, मेधावी और ब्रह्मचारी बनता है। पर आज कल लोग स्नान की पाबन्दी भर करते हैं। एक लोटे जल में ही उनका स्नान हो जाता है। शरीर में सैकड़ो मन मैल बैठा रहता है। देखकर ही घृणा-सी मालूम होती है। पर, फिर भी वे कहते हैं कि हम प्रतिदिन स्नान करते हैं। स्नान का क्या यही महत्व है? क्या इसी को स्नान करना कहते हैं कि स्नान करने पर मल के हजारों कण शरीर के ऊपर पड़े रहे? स्नान करनेवालों को दाद-खुजली नहीं होती। पर आजकल लोगो को स्नान करने पर दाद-खुजली हुआ करती है। इसका क्या कारण है? यही कि वे अच्छी तरह स्नान नहीं करते। उनके स्नान का अर्थ केवल एक लोटा जल शरीर पर डाल लेना है।

स्नान से शरीर स्वस्थ होता है। मन में शांति आती है। चित्त में प्रसन्नता का समावेश होता है। अतः प्रतिदिन नियम-पूर्वक स्नान करना चाहिए। स्नान का सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है। सूर्योदय से पहले प्रतिदिन स्नान कर लेना चाहिए। स्नान के लिए कुएँ का ताजा जल अत्यन्त उत्तम और गुणकारी होता है। सर्दी में पंद्रह मिनट और गर्मी में आधे घंटा तक स्नान करना चाहिए। स्नान करने के पहले अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग को तौलिये से खूब रगड़ो। पेट को भी खूब मलो। इससे शरीर में बल और स्फूर्ति आती है। शरीर के तमाम चर्म-छिद्र साफ हो जाते हैं। स्नान करते समय सब से पहले अपने मस्तिष्क को भिगोओ। इससे स्मरण-शक्ति एवं आँखों की ज्योति बढ़ती है। इसी कारण शास्त्र में इसके लिए यह आदेश भी है—"न च स्नायाद्विना शिरः।" अर्थात् बिना सिर को भली प्रकार भिगोये कभी न स्नान करना चाहिए। सिर को भिगो लेने के बाद, शरीर के सब अंगों पर पानी डालो और फिर हाथ से अपने अंग को भली प्रकार रगड़ो। स्नान कर लेने के पश्चात् तौलिये से शरीर के अंग-प्रत्यंगों को पोंछो। इससे शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और बचा-खुचा मल साफ हो जाता है। इसके बाद सूखा वस्त्र पहन कर धूप में टहलो। बस, इसी का नाम घर्षण-स्नान है और इसी से शरीर आनन्द तथा स्फूर्ति का भंडार बन जाता है। यदि प्रतिदिन नियमित रूप से इस नियम का पालन किया जाय तो मनुष्य कभी भी अस्वस्थ न हो। उसके शरीर का तेज और वीर्य सदैव दृढ़ तथा निर्मल बना रहे।

स्नान स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी तो है, परन्तु इसके नियमों के विरुद्ध कार्य करने से कभी-कभी यह स्वास्थ्य-विनाशक भी बन जाता है। अतः स्नान के कुछ उत्कृष्ट नियमों का जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ हम एक बंगाली पुस्तक के आधार पर स्नान के कुछ सर्वोत्कृष्ट नियमों का उल्लेख कर रहे हैं—

१. गर्मी के दिनों में दो बार स्नान करना चाहिए। गर्मी में शरीर

से पसीना निकलता है और पसीना गन्दगी की सृष्टि करता है। यदि दो बार स्नान न किया जायगा तो शरीर दूषित और गन्दा हो जायगा। जाड़े तथा वर्षा ऋतु मे यदि दो वार स्नान न किया जाय, तो विशेष हानि की सम्भावना नहीं है।

२. सावुन से मिला हुआ हुआ गर्म पानी शरीर के मलों को धो-बहाता है और त्वचाएँ साफ हो जाती हैं। अतः महीने मे एक बार सावुन और गर्म पानी के साथ अवश्य नहाना चाहिए। पर प्रतिदिन गर्म पानी का उपयोग करना हानिकर है। इससे ब्रह्मचर्य नष्ट होता तथा मस्तिष्क चञ्चल वन जाता है।

३. नदी और तालाव मे नहाना अधिक स्वास्थ्यकर है। समुद्र के जल से स्नान करना अधिक स्वास्थ्य-कारी होता है; किन्तु जिस स्थान पर नदी, तालाव और समुद्र न हो, वहाँ के मनुष्यो को कुएँ का ताजा और शीतल जल ही उपयोग मे लाना चाहिए।

४. नदी मे स्नान करने से मनुष्य को तैरना पड़ता है। तैरकर नहाना स्वाथ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इसे हम एक प्रकार का व्यायाम भी कह सकते हैं। इससे शरीर के सब अवयव पुष्ट होते हैं, अगो मे स्फूर्ति और शक्ति बढ़ती है और शरीर सुडौल होता है।

५. वहुत से लोग नहाने के बाद तुरन्त भोजन करने के लिए बैठ जाते हैं। वहुत से ऐसा भी करते हैं कि भोजन करने के पश्चात् तुरन्त स्नान करते हैं। स्नान की ये दोनों रीतियाँ बुरी हैं। इनसे पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है और चित्त में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होता।

६. रोगी तथा अशक्त मनुष्य को प्रतिदिन स्नान करना हानिकर है। ऐसे मनुष्य सप्ताह में एक वार शीतल जल से नहा सकते है। उन्हे जल की धार अपने ऊपर धीरे-धीरे छोड़नी चाहिए।

७. स्नान करने के पहले यदि शरीर मे कँपकँपी और जाड़ा मालूम हो, तो स्नान न करना चाहिए। इससे कभी-कभी ज्वर और जुकाम हो जाता है।

८. नहाने का स्थान खुला और प्रकाशमय होना चाहिए। शरीर पर उस समय लँगोटी के अतिरिक्त और कोई वस्त्र न होना चाहिए। नग्न अवस्था मे स्नान करना सर्वोत्तम है, पर इस रीति का पालन करना संवके लिए सुलभ नहीं हो सकता।

९. स्नान के समय मन की भावनाएँ पवित्र रहनी चाहिए। स्नान के नियम ब्रह्मचारियो के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इनका पालन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इससे स्वास्थ्य मे वृद्धि होगी और शरीर मे तेज तथा वल बढ़ेगा।

भोजन के सम्बन्ध मे हम पहले भी कुछ लिख चुके हैं; पर अब यहाँ विशद रूप से उसकी चर्चा करना अत्यन्त आवश्यक है। भोजन से हमारे जीवन का धनिष्ट सम्बन्ध है। यदि हमे भोजन न मिले तो हम अपने शरीर को ससार में नही रख सकते। कुछ ही दिनो बाद हमारे प्राण भोजन के अभाव में इस शरीर को छोड़ देंगे जिस भोजन की इतनी गुरुतर महिमा है, जिसका इतना महान् अस्तित्व हमारे शरीर के अन्दर छिपा हुआ है, ख़ेद है, उसके सम्बन्ध मे हम कुछ नहीं जानते और अज्ञानतावश अपने ही हाथो अपना विनाश कर डालते हैं।

भोजन

भोजन से शरीर का स्वास्थ्य स्थिर रहता है। इसी की शक्ति से मानव-शरीर में वीर्य नाम का वह पदार्थ उत्पन्न होता है, जिससे मानव-शक्तियाँ अपने को सुरक्षित रखती हैं। इसलिए प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी मनुष्य का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह भोजन के सम्बन्ध में गहरी जानकारी प्राप्त करे। भोजन मनुष्य के जीवन को वनाता और विगाडता है। वही उसका विनाश और विकास करता है। वही उसके हृदय मे सदाचार की सृष्टि करता है और वही उसे कुपथ की ओर भी ले जाता है। लोग आश्चर्य करेंगे; पर आश्चर्य करने की वात नही है। यह वताया जा चुका है कि भोजन ही मनुष्य का जीवन है।

अतएव मनुष्य जैसा भोजन करेगा, उसके हृदय में स्वभावतः वैसे ही विचार भी उत्पन्न होगे और उन्ही के सहारे वह संसार में अपना कदम भी बढ़ायेगा। पर संसार तो बुरे विचारों से जीता नहीं जा सकता। वह तो एक पवित्र आत्मा की सृष्टि है और पवित्र विचार ही उसके विजय के साधन हैं। फिर ऐसे मनुष्यो की क्या दशा होती है? वे सुविचार और सद्भावना के अभाव में संसार की परिस्थिति मे पीस उठते हैं। उनके जीवन का पता तक नही चलता। इसलिए प्रत्येक सांसारिक मनुष्य को ऐसा भोजन करना चाहिए, जिससे उसके शरीर में ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न हो, जो आसुरी शक्तियो पर सहज ही विजय प्राप्त कर सकें।

संसार मे ब्रह्मचर्य की शक्ति सब से प्रबल शक्ति है। केवल एक इसी शक्ति से मनुष्य सारे संसार मे उथल-पुथल मचा सकता है। पर ऐसी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हमे सात्विक भोजन की आवश्यकता होती है। मांस-मदिरा तथा इसी प्रकार की विदूषित वस्तुएँ खानेवाला मनुष्य कभी ब्रह्मचारी नही हो सकता। ब्रह्मचारी बनने के लिए केवल सात्विक आहार करना चाहिए। भगवद्गीता मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

> आयुः सत्त्व बलारोग्य सुखप्रीति विवर्द्धनाः।
> रस्याः स्निग्धा स्थिरा रुच्याहाराः सात्त्विका प्रियाः॥

जो आहार आयु, ओज, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति बढ़ाने वाला हो तथा जो सरस, चिकना, गुरु और रुचिवर्द्धक हो, वही भोजन सात्विक विचारवाले मनुष्यों को प्रिय होता है। इस सात्त्विक आहार से मानव-शरीर मे वीर्य की शक्ति बढ़ती है, ब्रह्मचारी बनने में सहायता प्राप्त होती है, बुद्धि का विकास होता है। काम, क्रोध, मद और लोभ का नाश होता है और स्वास्थ्य सबल होकर पुष्ट होता है। एक दूसरे स्थान मे लिखा हुआ है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।
स्मृति लंब्धं सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः प्रवर्तते ॥

अर्थात् भोजन की पवित्रता से सत्त्व की पवित्रता होती है। सत्त्व की पवित्रता से बुद्धि निर्मल तथा दृढ़ विचारवाली बन जाती है। फिर बुद्धि की पवित्रता से मुक्ति भी सुगमता से प्राप्त होती है। यह है, सात्विक भोजन की महिमा। इसके विपरीत राजसिक और तामसिक स्वभाव का भोजन करने से ब्रह्मचर्य का विनाश होता है। यहाँ हम उन वस्तुओं का यथाशक्ति नामोल्लेख कर रहे हैं जो तामसिक तथा राजसिक कहलाती हैं। प्रत्येक ब्रह्मचारी को इनसे बचने की चेष्टा करनी चाहिए।

राजसिक भोजन—जो अत्यन्त उष्ण, चरपरा, अत्यन्त मीठा, खट्टा, तिक्त, नमकीन, खटाइयाँ तथा बाजार की बनी हुई मिठाइयाँ, लहसुन, प्याज, मिर्च, मिरचा, हींग, भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि।

तामसिक भोजन—बासी, रसहीन, गला-सड़ा। जिन सम्पूर्ण वस्तुओं के खाने से धार्मिक बुद्धि का विनाश हो जाता है, उन सभी वस्तुओं की गणना तामसिक आहार मे है।

ब्रह्मचारियों के लिए सात्त्विक आहार ही सर्वोत्तम है। सात्विक आहार भी उन्हे थोड़ा और सूक्ष्म करना चाहिए। अधिक भोजन कर लेने से शरीर में औदास्य भाव की वृद्धि होती है। मन पापो की ओर दौड़ने लगता है। अनेक भयङ्कर रोग हो जाते हैं। स्वप्न-दोष विशेषतया एक इसी कारण से होता है। अति भोजन के सम्बन्ध मे एक स्थान पर लिखा हुआ है—

अनारोग्यमनायुष्यम् स्वर्ग्यं चातिभोजनम ।
अपुण्यं लोकविद्विष्ट, तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

भोजन की अधिकता से अस्वस्थता बढ़ती है। आयु-शक्ति क्षीण होती है। शरीर मे अनेक रोग पैदा होते हैं। मन पाप-कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और लोगो मे अपवाद भी फैलता है। अतएव ब्रह्मचारियों

को सात्विक भोजन भी सावधानी से करना चाहिए। वासी सात्विक भोजन तामसी हो जाता है। इसलिए उन्हे इससे भी दूर रहना चाहिए।

भोजन शांत और सुस्थिर मन से किया जाय। चित्त में प्रसन्नता के भाव हो और अपने समूचे रूप मे ही गले के नीचे न उतार दिये जायँ; वल्कि उन्हे दाँतो से खूब पीस-पीसकर खाना चाहिए। इससे भोजन का भली प्रकार रस निर्माण हो जाता है। पाचन शक्ति में भी प्रगति आती है। शरीर भी स्वस्थ और सबल वनता है। शरीर से रोग दूर भागते हैं। इसलिए भोजन करते समय कभी ग्लानि और क्रोध के भाव चित्त मे न लाना चाहिए।

फलाहार—फल प्राकृतिक पदार्थ होते हैं। इनमे स्वभावतः ऐसे गुण छिपे रहते हैं, जिनसे स्वतः जीवन-शक्तियो का विकास होता है। प्राचीन काल मे भारतीय ऋषि-मुनि फलो पर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। पर उनकी चेतन-शक्तियाँ कितनी बढ़ी हुई थीं! उनमे कितना आत्मवल भरा हुआ था! वह किस भाँति ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा कर संसार में अपने नाम को अमर कर गये। इस समय भी व्रतो के अवसर पर फलो का उपयोग किया जाता है। इसका यही कारण है कि फलो की शक्तियाँ मनुष्य को ब्रह्मचारी बनाने में सहायता देती हैं। प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन फलो का उपयोग करना चाहिए।

फलो के खाने से कितने लाभ होते हैं, यहाँ सूक्ष्मरूप से हम उनका वर्णन कर रहे हैं—

१. फलों से मनुष्य का स्वास्थ्य सबल होता है। उसकी जीवन शक्तियो का विकास होता है। बुद्धि निर्मल होती है। वासनाओ का नाश होता है। आयु में वृद्धि होती है। चित्त प्रसन्न और सुस्थिर रहता है।

२. मन बुरी भावनाओं की ओर नही झुकता। हृदय ज्ञान के प्रकाश से आलोकित होता है।

३ शरीर स्वस्थ रहता है। निर्बलता दूर हो जा
साफ होता है। कब्ज की शिकायत नहीं रहती।

४. वीर्य पुष्ट होता है। शरीर कांति और तेज
जाता है। इन्द्रियाँ मन को विचलित नहीं करतीं।

दूध इस ससार में एक अमूल्य वस्तु है। इसके
शरीर सबल तथा पुष्ट बनता है। वीर्य-धारण की श

दुग्धाहार

है। प्राचीन काल में भारतीय ऋ
अपना जीवन व्यतीत करते थे। उ
था। उनके पास एक-न एक गाय स
थी। वे गाय का ताजा दूध प्रतिदिन पान किया करते
में अनेक गुणकारी वस्तुएँ मिली रहती हैं। इसीसे
स्वास्थ्य अत्यन्त बलवान और शारीरिक शक्तियाँ अत
थीं। वैद्यक शास्त्र में भी दूध के अनेक गुण बताये गये
चारी को गाय का दूध प्रति दिवस पीना चाहिए।
कुछ गुणो का उल्लेख, एक वैद्यक ग्रन्थ के अनुसार व

१ गाय का ताजा दूध मन में शान्ति उत्पन्न
और वीर्य का विकास करता है।

२. मन मे धार्मिक भाव उत्पन्न होते हैं। श
सचार होता है। मस्तिष्क मे शीतलता तथा स्फूर्ति आ

३. वीर्य-सम्बन्धी अनेक रोगों का विनाश होत

४. मन तथा हृदय की शक्तियाँ पुष्ट होती हैं

सगति के ऊपर दूसरे स्थान पर हम बहुत
चुके हैं। अतः यहाँ अब अधिक लिखने की आवश्य

सत्सग

होती। सगति का मनुष्य के हृद
प्रभाव पड़ता है। बड़े बड़े अनाचा

दुर्जनों के साथ से नष्ट हो जाता है। इसलिए संसार में बहुत कुछ सोच-समझ कर ही किसी की संगति करनी चाहिए। बुरे मनुष्यों का कभी साथ न करे। सदैव अच्छे लोगों का ही साथ करे। उन्हीं के पास बैठे-उठे। उन्हीं से बातें करे। उन्हीं से सांसारिक सम्बन्ध स्थापित करे। सत्संग की महिमा, गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़े अच्छे शब्दों में गाई है। देखिए—

तात ! स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥

वेद, शास्त्रों में भी इसी प्रकार सत्संग की महिमा पाई जाती है। सत्संग से बुद्धि का विकास होता है, हृदय मे धार्मिक भावनाएँ जागृत होती हैं, मन सदाचार और ब्रह्मचर्य की ओर प्रवृत्त होता है, मन मे भोग-विलास की निःसारता के प्रति भाव उदय होते हैं और शारीरिक तथा मानसिक शक्तियो का विकास होता है। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी को सदैव अच्छे मनुष्यो के साथ बैठना चाहिए। दुर्जनो से उन्हे पाप से भी अधिक घृणा करनी चाहिए।

सद्ग्रन्थावलोकन

पुस्तकें ज्ञान से भरी रहती हैं। उनमे अनेक प्रकार की बातें पाई जाती हैं। उनसे मन का मनोरंजन होता है। साथ ही हृदय में नये विचारो की शक्ति भी जागृत होती है और उन्हीं शक्तियो के अनुसार मन अपने लिए मार्ग तैयार करता है। यह रास्ता कभी कल्याणकारी सिद्ध होता है और कभी खतरनाक। खतरनाक वह तभी सिद्ध होता है, जब बुरे विचारवाली पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ब्रह्मचारियो के लिए ऐसा ज्ञान विषैला होता है। उन्हे कभी कामशास्त्र की पुस्तक हाथ मे न लेनी चाहिए। उपन्यास और प्रेम-सम्बन्धी नाटक भी उन्हें न पढ़ना चाहिए। उपन्यासो मे बहुत-से ऐसे पात्र होते हैं, जिनका चरित्र पाप की भावनाओ से पूर्ण होता है। उन उपन्यासों

और नाटकों से उनकी ब्रह्मचर्य-वृत्ति में धक्का लगने की आशंका रहती है।

ब्रह्मचारियो के लिए सद्ग्रन्थ ही सबसे उत्तम हैं। ससार मे सद्ग्रन्थो से बढ़कर दूसरा कोई साथी नहीं। इनमें वह ज्ञान भरा रहता है, जिससे मनुष्य की मानवता का विकास होता है। इसमें ऐसी शक्तियाँ अन्तर्हित रहती हैं, जिन्हें पाकर मनुष्य क हृदय का साहस चमक उठता है। अमेरिका के एक मनुष्य का कथन है कि यदि ईश्वर मुझसे कोई चीज माँगने को कहे, तो मैं उससे कहूँगा कि "मेरे पास सद्ग्रन्थो का अभाव न हो।" सचमुच वह मनुष्य बड़ा भाग्यशाली होता है। सूक्ति का वाक्य है:—

यस्यास्ति सद्ग्रन्थविमर्श भाग्य।
कि तस्य शुष्कैश्चपला विनापैः ॥

जिसके भाग्य में सद्ग्रन्थो का अध्ययन करना बदा है, उसके लिए लक्ष्मी के शुष्क विनोद किस काम के! सूक्ति के इस कथन के अनुसार सद्ग्रन्थ ही संसार में अमूल्य धन है। प्रत्येक मनुष्य को इनकी रक्षा करनी चाहिए। सद्ग्रथो से मन की बुरी चिन्ताएँ मिट जाती हैं। हृदय में सच्चे ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है। विषय की वासनाएँ दब जाती हैं। मन तथा मस्तिष्क में शान्ति के भाव उदय होते हैं। उद्योग और परिश्रम का पाठ सिखने को मिलता है। इसलिए ब्रह्मचारियो को सदैव सद्ग्रन्थ ही पढ़ना चाहिए।

मानव शरीर के लिए शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। शक्ति से ही मन की इन्द्रियाँ सयम की डोरी मे बाँधी जाती हैं, और शक्ति से ही मनुष्य काम की वासनाओ पर विजय प्राप्त करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जो निर्बल होता है, जिसके शरीर मे शक्तियो का अभाव होता है, वह अधिक कामी और विलासी होता है। वीर्य की प्रबल उत्तेजना को शान्त

व्यायाम

करने में वह प्राय: असमर्थ-सा होता है, और इधर-उधर लोलुप कुत्तों की भाँति वासना की आग मे वीर्य का सर्वनाश किया करता है। ऐसे ही मनुष्यो द्वारा समाज और राष्ट्र के अन्दर पाप का बीजारोपण होता है। अनेक प्रकार के सक्रामक रोग फैलकर भीतर-ही भीतर समाज को अशक्त बनाने लगते हैं। अतः ऐस मनुष्यो की उत्पत्ति को समाज के अन्दर रोकना चाहिए।

इन मनुष्यों तथा इनकी असमर्थता का विनाश तभी हो सकता है, जब इनमें व्यायाम की प्रथा का प्रचार किया जाय। हम तो कहेंगे कि समाज की ओर से ऐसे नियम होने चाहिएँ; जिनके द्वारा विवश होकर व्यायाम करना पड़े। ब्रह्मचर्य के लिए व्यायाम एक प्रबल साधन है। वीय का रोकना तभी सम्भव हो सकता है, जब मनुष्य की इच्छा सद्भावो से भरी हो तथा उसके शरीर की शक्तियाँ उच्छृंखल न होकर गम्भीर हो। उसे काम का प्रबल झकोरा इधर-उधर न हिला डुला सके। व्यायाम द्वारा शरीर मे इन दोनो साधनो का समावेश होता है। जब मनुष्य व्यायाम करने लगता है, तब उसके शरीर के सम्पूर्ण अंगो को क्रियाशील बनना पडता है, तथा परिश्रम भी करना पड़ता है। परिश्रम और अभ्यास शक्ति का उत्पादक है। अतः व्यायाम से शरीर का अंग-प्रत्यंग एक अद्भुत शक्ति से भर जाता है। हृदय में साहस के भाव लहराने लगते हैं। मुख पर अद्भुत कान्ति दौड़ उठती है, और मन सदिच्छाओं का भाण्डार-सा बन जाता है। सुश्रुत संहिता मे लिखा है:—

> शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
> दीप्ताग्नित्वमनालस्यं, स्थिरत्व लाघव मृजा॥
> श्रम क्लम पिपासोष्ण शीतादीनां सहिष्णुता।
> आरोग्यञ्चापि परम; व्यायामादुपजायते॥

अर्थात् व्यायाम से शरीर की कान्ति बढ़ती है। अंग-प्रत्यगों का गठन अत्यन्त भला-सा मालूम होता है। अग्नि दीप्तता, स्थिरता,

निरालस्यता, स्फूर्ति, परिश्रम, सर्दी-गर्मी आदि के सहने की शक्ति और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

प्राचीन काल में भारतवर्ष मे व्यायाम की बडी प्रबल मर्यादा थी। बच्चे तक व्यायाम करते थे। उन्हें व्यायाम का महत्त्व सिखाया जाता था। वे अपने समय का उचित भाग व्यायाम में व्यय करते थे। यही कारण था कि उस समय भारत के मनुष्य बली और मेधावी होते थे। आज भी उस प्रथा का थोड़ा-बहुत रूप कहीं-कही देखने को मिलता है। गाँव के कुछ लोग व्यायाम की क्रिया का पालन करते हैं। पर अधिकांश लोग ऐसे हैं, जो व्यायाम के महत्त्व को नहीं जानते। उनकी दृष्टि में व्यायाम निकृष्ट श्रेणी के मनुष्यो का काम है। दिन-रात फैशन से लदे रहते हैं। इत्र और गुलाब की हवायें उनके शरीर पर नाचती रहती हैं। फिर मिट्टी से भरे हुए अखाडे में कैसे उतरें। उनके शरीर का सौन्दर्य नष्ट हो जायगा और वे फिर बाजार में लज्जा बेचने वाली घृणित पात्रियो के यहाँ कैसे सम्मान प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु उनका स्वास्थ्य कैसा है? जवानी में ही कमर झुक गई है। चलते हैं तो मालूम होता है मानों कोई साठ वर्ष का बूढ़ा जा रहा है। शरीर की चमड़ियों पर झुर्रियाँ पड़ रही हैं, मुँह सूखकर काँटा हो गया है। आँखें पलकों के अन्दर धँस गई हैं। पीठ की हड्डियाँ साफ साफ दिखाई दे रही हैं। धिक्कार है ऐसे युवको को! इनसे समाज और राष्ट्र का क्या कल्याण हो सकेगा? एक जर्मन प्रोफेसर ने अपने देश के युवकों को व्यायाम की शिक्षा देते हुए कहा था कि:—"अच्छा हो वह युवक मर जाय, जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्तियो को पुष्ट नही करता! कारण, युवक की शक्तियों का समाज और राष्ट्र भूखा है।"

कितने मार्के की बात है? पर भारतीय युवक इसका क्या महत्व समझ सकेंगे? वे तो विलासिता के गोद मे खेल रहे हैं, वे तो अपने मन के संयम को दूर फेंककर पाप की भावनाओं से क्रीडा कर रहे हैं?

पर अब भी समय है। प्रत्येक भारतीय युवक का धर्म और कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह प्रति दिन नियमित रूप से व्यायाम अवश्य करे। प्रोफेसर राममूर्ति के उपदेशो के अनुसार मैं यहाँ कुछ व्यायाम के नियमों का उल्लेख कर रहा हूँ:—

१. व्यायाम प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। पर इसकी गति धीरे धीरे बढ़ाई जाय। अधिक व्यायाम भी हानिकारक होता है।

२. व्यायाम करते समय भली प्रकार ध्यान रहे कि परिश्रम का भार प्रत्येक अग पर पड़े। अंगों का सचालन धीरे-धीरे हो।

३. व्यायाम के समय मुख बन्द रहना चाहिए। श्वास-प्रश्वास की क्रिया नाक ही द्वारा पूरी की जाय। श्वास धीरे-धीरे छोडना तथा ग्रहण करना चाहिए। व्यायाम का अभ्यास प्राणायाम के साथ करना चाहिए। इससे मनुष्य का सीना चौडा, बलशाली और सुदृढ़ बनता है।

४. व्यायाम के समय मन में सदैव वीर भाव होना चाहिए। आदर्श ऊँचा हो। मन, भीतर ही भीतर किसी वीर मूर्त्ति के स्थिरता की कल्पना करता हो।

५. व्यायाम करने के पश्चात् कुछ देर तक टहलना चाहिए। इसके बाद ठढाई पीना चाहिए। ठढाई मे—आठ दस बादाम, एक माशा धनियाँ, पाँच काली मिर्च के दाने, दो छोटी इलायची और थोड़ी-सी मिश्री हो। सर्दी के दिनो में इन चीजो मे थोड़ी-सी सोठ भी मिला लेनी चाहिए। सब वस्तुओ की मात्रा अपनी शक्ति के अनु-सार बढ़ाई भी जा सकती हैं।

६. व्यायाम करने वाले को सात्विक भोजन ही करना चाहिए। मांस तो उसे कभी हाथ से भी न छूना चाहिए। मांस खाने से शरीर में क्रूरता और आलस्य का भाव प्रगट होता है।

प्रत्येक ब्रह्मचारी और युवक को प्रोफेसर राममूर्तिके उक्त नियमों के अनुसार प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए। प्रोफेसर राममूर्ति आज की दुनियाँ में व्यायाम के प्रबल उदाहरण हैं। व्यायाम ने ही उनके

शरीर में वह शक्ति भर दी है, जिसके तप पर वे आज कलियुग के भीम कहे जाते हैं। यदि तुम भी ससार में वीर और ब्रह्मचारी बनना चाहते हो तो राममूर्ति के बनाये हुए नियमों के अनुसार प्रतिदिन व्यायाम करो।

जब हम अपने प्राचीन धर्मशास्त्रों को पढ़ने लगते हैं, तब हमें चार अक्षरो से बना हुआ एक छोटा-सा शब्द मिलता है। इस शब्द का नाम उपवास है। ईसाइयों की बाइबिल और मुसलमानों

उपवास

के कुरान मे भी इस शब्द की व्यापकता है। प्राचीन धर्म गुरुओं ने भी इसका बार-बार नाम लिया है और व्रतों पर उपवास करने की आज्ञा दी है। इसका वास्तविक रहस्य भी उन्हीं धर्मशास्त्रों में पाया जाता है। मनुष्य प्रतिदिन भोजन करता है। अग्नि प्रतिदिन उसके शरीर के भोजन की सामग्रियो को जलाती और उनका जीवन-रस तैयार करती है। इस प्रतिदिन की सचालन गति में मनुष्य की असावधानी के कारण कभी-कभी अनियमितता-सी आ जाती है और मनुष्य अजीर्ण आदि रोगो का शिकार हो जाता है। शरीर मे आलस्य और दौरात्म्य भावनायें जग उठती हैं। मन पाप की ओर झुक पड़ता है। वीर्य का विनाश होने लगता है। उपवास इन्ही बुराइयो को दूर करने का प्रबल साधन है। उपवास से मन की भावनायें पवित्र होती एव हृदय शुद्ध रहता है। मस्तिष्क में नई चेतना के साथ नया जीवन उत्पन्न होता है, शक्ति बढ़ती है। यही उपवास का रहस्य हे।

पर आजकल लोग उपवास की प्रथा का पालन ठीक रीति से नही करते। उपवास का तात्पर्य है, कुछ न खाना। पर आज कल कौन ऐसा करता है ?, व्रतों के अवसर पर प्रत्येक घर का प्रत्येक प्राणी उपवास करता है। पर कदाचित् ही कोइ निराहार रहता हो ? उस दिन, अन्य दिनों की अपेक्षा उनके घर का पैसा अधिक व्यय होता है। उस दिन वे दूध भी खाते हैं और मलाई भी। आलू भी खाते

हैं तथा कर्द और सिंचाड़े भी। नमकीन भी खाते हैं और मिठाई भी। इसे हम व्रत नहीं कहते। न इससे कुछ लाभ ही होता है। हाँ, शारीरिक शक्तियों का विनाश अवश्य होता है। उनमे ताजगी और नया जीवन नहीं आता। मन की बुरी भावनाएँ भी नष्ट नहीं होतीं। मलिनता ज्यो की त्यों बनी रहती है।

इस समय व्रत के महान् उद्देश्यों को महात्मा गाँधी ने अच्छी तरह समझाया है। वे जितना व्रत के नियमो का पालन करते हैं, शायद ही ससार का कोई दूसरा करता हो! यदि मैं भूलता नहीं तो महात्माजी सप्ताह मे एक दिन अवश्य व्रत रहते है। व्रत से हृदय शुद्ध होता है। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी को व्रत के महान् उद्देश्यो को समझना तथा उन तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए।

ब्रह्मचर्य काल मे प्रत्येक मनुष्य को ऐसी वस्तुओ का उपयोग करना चाहिए जो काम की इच्छाओ को रोक सके। जो वासनाओं को मिटाकर मनुष्य को व्रतवान बना सके। अन्य साधनो के साथ ही साथ खड़ाऊँ भी इसके लिए एक प्रवल साधन है। खडाऊँ से काम की इच्छाओ का शमन होता है। मनुष्य के पैर के अँगूठे और जननेन्द्रिय की नली एक दूसरे से मिली हुई हैं। खडाऊँ की खूटियाँ, अँगूठे की नसो द्वारा जननेन्द्रिय की नसों को दबाये रहती हैं, उनमे उत्तेजना और चञ्चलता नहीं उत्पन्न होने पाती। इसके अतिरिक्त पाँव सदैव खुले रहते हैं। उन्हे स्वच्छन्द वायु सदा मिलती रहती है। पैर की नसें, स्वच्छन्द वायु को सब समय ग्रहण करती है। और शरीर के अन्यान्य भागो को भी बाँटती हैं। इसलिए खडाऊँ का उपयोग करना अत्यावश्यक है।

खड़ाऊँ

प्राचीन काल में, भारत मे खडाऊँ का ही अधिक उपयोग होता था। ब्राह्मण और पूजा पाठ करनेवाले मनुष्य विशेष रूप से इसका उपयोग करते थे। इस समय भी अनेक लोग खड़ाऊँ पहनते हैं। बहुत-से साधु-संन्यासी ऐसे भी देखे जाते हैं, जो खड़ाऊँ पहनकर सैकड़ो

मील की यात्रा पूरी कर डालते हैं। इसमें एक रहस्य है। और वह रहस्य यह है कि खडाऊँ मनुष्य को ब्रह्मचारी बनाता है। खडाऊँ का अच्छा होना उसकी खूटियो पर निर्भर है। खूटियाँ गोल, बड़ी तथा नीचे गद्देदार हों। ऐसी खूटियोवाला खडाऊँ अच्छा और स्वास्थ्यप्रद कहा जाता है।

प्राणायाम

प्राणायाम एक अद्भुत शक्ति है। इससे मानव-जीवन का विकास होता है। शरीर की शक्तियाँ सुदृढ़ होती हैं। योगी प्राणायाम द्वारा ही अखण्ड योग की साधना करते हैं। प्राचीन काल मे भारत का प्रत्येक पुरुप प्राणायाम-विज्ञान को भली भाँति जानता था। सभी किसी-न-किसी अश मे प्राणायाम करते भी थे। पर, आज हम अपनी उन शक्तियों को भूल गये हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में अपने आपको खो बैठे हैं। हम दूसरे की शक्तियो को देख कर आश्चर्य करते हैं, हमारी आँखें दूसरो की विज्ञान-वस्तुओं को देखकर चकाचौंध हो जाती हैं। पर हम यह विचार नही करते कि यह सम्पदा किसकी है ? कौन इसका पहले उपभोग कर चुका है। जिस दिन हम इसका विचार करेंगे और गवेषणा से काम लेंगे उस दिन हमें यह भली-भाँति विदित हो जायगा कि यह सब वस्तुएँ हमारे ही पूर्वजो के मस्तिष्क से निकली हैं। पर हम उन्हें भूल गये हैं और दूसरे, उसका उपयोग कर रहे हैं। यदि हम अपने प्राणायाम विज्ञान को भूल न गये होते तो आज यह दुराचार और अज्ञानता पूर्ण वातावरण हमारी नजरो के सामने न आता। हम रोगी और क्षीणकाय न होते। हमारे बच्चे असमय मे ही भयानक रोगो के शिकार हो काल के गाल में न जाते। किसी ने सच कहा है कि जो अज्ञानता में पडकर अपनी पैतृक सम्पत्ति को त्याग देता है, उसे अनेक प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है।

आज हमारी यही दशा है। हममे से अनेक प्राणायाम के

विज्ञान को नहीं जानते। प्राणायाम, जीवन के लिए सजीवनी शक्ति है। मनु ऋषि का कथन है:—

दह्यन्ते ध्माय मानना, धातूना हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणा दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थात् जैसे अग्नि में डालकर जलाने से धातुओ के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियो के सम्पूर्ण रोगों का विनाश हो जाता है। प्राणायाम, गृहस्थ-योगी सभी के लिए अत्यन्त कल्याणकर है। इससे वीर्य का रक्षण होता है। वीर्य तरल होने के कारण पानी की भाँति नीचे की ओर झुकता है। वीर्य के निकल जाने से शरीर निस्तेज और साहस-हीन हो जाता है। पर प्राणायाम मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर उसकी ब्रह्मचर्य शक्ति को सुदृढ़ करता है। शरीर मे नवजीवन का सचार होता है तथा मानसिक शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं।

प्राणायाम के अनेक भेद हैं। यह विशेष रूप से केवल तीन है। शेप इन्ही तीनो के अंतर्गत माने जाते है। पहला पूरक, कुम्भक रेचक के साथ; दूसरा कुम्भक के साथ; तीसरा कुम्भक हीन होता है। तीनो में, दो की विधियाँ इस प्रकार है—

१. पूरक, नासिका के पीछे बाये छेद को दाहिने हाथ के अँगूठे से दबाकर वायु को शनै शनै भरना।

२. कुम्भक, बीच की दोनो अँगुलियो से नाक के बाये छेद को बन्दकर पेट मे भरी हुई हवा को रोकना।

३. रेचक, और फिर नाक के बाये छेद द्वारा पेट मे भरी हुई हवा को धीरे बाहर निकाल देना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य को प्रणायाम करना चाहिए। तीन प्रातःकाल और तीन सायंकाल। प्राणायाम करने का स्थान अत्यन्त पवित्र हो। मन भी पवित्र और शुद्ध हो। किसी प्रकार की गन्दगी न हो।

चारों ओर से स्वच्छन्द तथा निर्मल वायु आती हो। प्राणायाम करते समय सिद्धासन का उपयोग करना चाहिए। सिद्धासन से किया हुआ प्राणायाम अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। प्राणायाम से होने वाले लाभ का हम यहाँ सूक्ष्म रूप से वर्णन करते हैं:—

१. प्राणायाम करनेवाला मनुष्य काम की शक्तियो पर विजय प्राप्त करता है। उसके हृदय मे वे दूषित विचार कभी नहीं उठते, जिनसे मनुष्य के मनुष्यत्त्व का विनाश होता है।

२. बुद्धि का विकास होता है। शारीरिक शक्तियों की वृद्धि होती है।

३. शरीर मे किसी प्रकार के रोग नही रह जाते और न आने की ही सम्भावना रहती है।

४. वीर्य-शक्तियाँ पुष्ट होती हैं।

५. हृदय में आत्मज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है।

६. मन की प्रवृत्तियाँ कुमार्ग की ओर नहीं जाती।

७. मनुष्य स्वस्थ बनकर दीर्घजीवी होता है।

लँगोट

ब्रह्मचर्य साधन के लिए लँगोट एकमात्र साधन है। इससे जनेन्द्रिय की उत्तेजना दबी रहती है। मन में वीरता तथा पवित्रता के भाव उत्पन्न होते है। अंडकोष लटककर नीचे नहीं झुकने पाते। उनमे वृद्धि होने की बहुत कम आशंका रहती है। बहुत-से मनुष्यों का खयाल है कि लँगोट बाँधना बुरा है। इससे मनुष्य की वीय शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और वह नपुंसक बन जाता है। यह बिलकुल गलत धारणा है। अनेक वीर मनुष्यों का यह अनुभव है कि लँगोट बाँधने से वीर्य की शक्तियाँ सुदृढ़ होती हैं। मन संयम-शील बनता है। हाँ, पाप-विचारो का अवश्य नाश हो जाता है। कामियो की भाँति जनेन्द्रिय में बार-बार उत्तेजना नहीं उत्पन्न होती। चित्त शांत और सुस्थिर रहता है।

लँगोट से वीर्य की रक्षा होती है। प्रत्येक संन्यासी और ब्रह्म-चारी को प्रतिदिन लँगोट बाँधना चाहिए। लँगोट मुलायम तथा पतले कपड़े का होना चाहिए। एकहरा लँगोट सर्वोत्तम होता है। दोहरे लँगोट से वीर्यनाश की आशका रहती है। लँगोट का बन्धन ढीला होना चाहिए। लँगोट को प्रतिदिन अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिए। गन्दा होने से प्रायः काछ की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

मनुष्य वैराग्य से ही ससार पर विजय प्राप्त कर सकता है। मानव-जीवन के लिए वही एक अमोघ अस्त्र है। जिसने इस अस्त्र को अपने हाथ मे ग्रहण-कर पाया है, उसे ससार की वैराग्य की भावना माया शक्तियाँ कभी मोह मे नही डाल सकती। उसके लिए ससार निःसार है। संसार की सारी वस्तुएँ शून्य-सी है। सौंदर्य-मयी रमणियों का सौंदर्य, उसकी विरागी आँखो के सामने विप के समान है। वह इसको उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे लोग फूटी कौड़ी को छोड़ दिया करते हैं। वह विरागी बनकर अपने हृदय मे जिस अखण्ड प्रेम का राग अलापता रहता है, उसके सामने ससार का प्रेम उसके लिए शून्य है। कामि-नियो की सुन्दरता त्रिपैली है।

विरागी पूर्णरूप से ब्रह्मचारी होता है। विषय शक्ति उसके हृदय से निकल जाती है। ससार की वस्तुएँ उसे अपने फन्दे मे फँसाने मे असमर्थ-सी रहती है। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी को विरागी बनना चाहिए। सारे ससार को निःसार तथा स्त्री-पुरुषो के शरीर को केवल हाड़-मांस का ढाँचा समझना चाहिए। वैराग्य की इस भावना से मन सुदृढ़ हो जायगा। संसार की विपय-वासनाएँ, अपने जाल मे मन को न फँसा सकेंगी, और ब्रह्मचर्य की साधना पूर्ण रूप से साधी जा सकेगी।

सूर्य, संसार का प्राण है। ससार का प्रत्येक प्राणी सूर्य-शक्तियों

से ही जीवित रहता है। प्रकृति का प्रत्येक पौधा, इसी सूर्य द्वारा-ही भोजन और शक्ति प्राप्त करता है। यदि सूर्य न हो तो संसार की सारी सत्ता मिट जाय। एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक सर्वनाश की भेरी बज जाय। पाश्चात्य देश के वैज्ञानिको ने भी इसी का समर्थन किया है। वेदो ने भी सूर्य की अखण्ड महिमा का गान किया है।

सूर्यताप-सेवन

सूर्य की किरणें सब को जीवन-प्रदान करती हैं। इनमे एक अद्भुत शक्ति छिपी रहती है। वैज्ञानिको का विचार है कि सूर्य की किरणो से मानव-शक्ति का अधिक कल्याण होता है। उनकी शक्तियाँ अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक होती हैं। वीर्य-रक्षा मे पर्याप्त सहायता मिलती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन सूर्य-ताप सेवन करना चाहिए।

प्रतिदिन घण्टे भर सूर्यताप सेवन करना चाहिए। धूप मे सूर्य की ओर मुख करके गम्भीरतापूर्वक बैठ जाना चाहिए। उस समय मन मे यह सोचना चाहिए कि सूर्य की किरणें मेरे शरीर में शक्ति का सचार कर रही है, मेरी आत्मा प्रबल बन रही है, वीर्य पुष्ट हो रहा है, शरीर के समस्त रोगो का विनाश हो रहा है, और जीवन का परमाणु धीरे धीरे शरीर मे प्रवेश कर रहे हैं। इस तरह प्रतिदिन सूर्यताप का सेवन करनेवाला मनुष्य कुछ दिनो मे ब्रह्मचर्य व्रत-पालन की पर्याप्त शक्ति सगृहीत कर लेता है। प्रत्येक ब्रह्मचारी को सूर्य ताप का सेवन आवश्यक है।

इन्द्रियों पर संयम

ब्रह्मचर्यव्रत के लिए सबसे प्रबल साधन इन्द्रियो का संयम है। इन्द्रियाँ ही मनुष्य को बिगाड़ती तथा उसे पाप मार्ग की ओर ले जाती हैं। मनुष्य के शरीर मे कई इन्द्रियाँ हैं। सभी इन्द्रियों के भिन्न-भिन्न विषय और काम हैं। वे प्रतिदिन अपने प्रकृत-स्वभाव के अनुसार काम करतीं तथा सांसारिक वस्तुओ को ग्रहण करती हैं। ससार अनेक वस्तुओं से भरा है। चारो ओर इसकी धारा बह रही है। सौन्दर्य

और मोह-मयी भावनाओं की ही प्रबलता है। इन्द्रियाँ इन्हें आकर्षक जानकर स्वभावत; इनकी ओर दौडती हैं। यदि मनुष्य ने चेतना से काम न लिया, तो प्राय: उसका विनाश-सा हो जाता है। लोलुप इन्द्रियाँ उसकी' मानव-शक्ति को प्रकृति की भयङ्कर ज्वाला मे विनष्ट कर डालती हैं।

मानव-जीवन का ' र ससार पर विजय प्राप्त करना है, और यह तभी सम्भव हो सकत । है जब इन्द्रियो को अपने वश मे किया जाय। इन्द्रियाँ श के ही समय, प्रायःपाप-मार्ग की ओर दौड़ती हैं। उसी सम हमयी दुनियाँ की ओर झाँकने अवसर मिलता है। इसलिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उन इ न्द्रियो को, जिनसे पाप की सृष्टि होती है, सदैव अच्छे कामों मे ये रहे। उन्हे बुरे मार्ग की ओर जाने का अवकाश ही न दे। इससे ब्रह्मचर्य-साधन मे सहायता मिलेगा, शरीर की शक्तियों का विकास होगा, और हृदय में आत्मिक ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होगा।

प्रत्येक ब्रह्मचारी को परिश्रम-पूर्ण कार्यों में लगा रहना चाहिए। अच्छी और सुरुचि-पूर्ण पुस्तको का अध्ययन करना चाहिए। ईश्वर की प्रार्थना तथा महापुरुषो के जीवन-चरित्रो का पाठ करना चाहिए। अच्छे भाव वाले गीतो को गाना चाहिए। सद्वृत्तियों का सहारा लेना चहिए। यही ब्रह्मचर्य के मूल साधन हैं। प्रत्येक ब्रह्मचारी को इन्हीं का सहारा लेना चाहिए।

इन नियमो के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य-साधन के अनेक नियम हैं। परन्तु यहाँ वही लिखे गये हैं, जो सुविधा-पूर्वक सर्व-ग्राह्य हो सकते हैं। इन नियमो का ध्यान-पूर्वक पालन कर कोई भी मनुष्य अपनी वीर्य-शक्ति को सुरक्षित रख सकता है।

ब्रह्मचर्य पर विद्वानों की सम्मतियां

संसार मातृमय है। इसमे पाप-वासना के लिए स्थान ही कहाँ? अतएव ब्रह्मचर्य पालन में कठिनाई ही क्या है? माता स्वयं अपने पुत्रों की रक्षा करती है।

—रामकृष्ण

वीर्य मनुष्य शरीर का जीवन है। इसके दूषित होने से रक्त का सर्वनाश हो जाता है और अन्त मे ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है कि वीर्य-रक्षा का उपाय नजर नहीं आता।

—डाक्टर हार्न

ईश्वर के राज्य में सर्वप्रिय बनने के लिए अविवाहित जीवन विताना धर्म है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मचर्यमय जीवन ही स्वर्गिक आदेश है।

—महात्मा ईसा

मनुष्य को चाहिए कि वह संसार में अपना जीवन सदाचारमय बनावे। कारण, सदाचार ही संसार में वास्तविक सुख है।

—महात्मा सुकरात

समाज में सुख-शान्ति की वृद्धि के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना चाहिए। इससे मानव-जीवन का विकास तथा समाज की भित्ति प्रबल होती है।

—महात्मा टालस्टाय

यदि संसार मे रह कर जीवन की सार्थकता प्रमाणित करनी हो तो वीर्य की रक्षा करके दैवी गुणों की प्राप्ति में सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

—स्वामी सत्यदेव

वीर्य से आत्मा को अमरत्व प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करना चाहिए।

—स्वामी नित्यानन्द

वीर्य ही साधुता और दुर्बलता पाप है। अतः बलवान और वीर्य-वान बनने की चेष्टा करो।

—स्वामी विवेकानन्द